॥ श्रीः ॥

गोलतत्त्वप्रकाशिका।

जिसको

सहिजादपुर निवासि पं० विश्वेश्वरदत्तने

बनाया।

जिसमें

पृथ्वीके रुपादिकोंका वर्णन विशदरूपसे कियागयाहै।

वही

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बंबई

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयमें

मुद्रितकर प्रकाशित किया।

संवत् १९६१, शके १८२६

विज्ञप्ति ।

हम अपने प्रियपाठकोंके सन्मुख आज इसछोटेसे ग्रंथको इस अभिप्रायसे धरते हैं कि इसे पढ़कर गोलज्ञानके आनन्दको प्राप्तकरें और अपने पूर्वज महर्षियोंके ज्ञानगौरवको समझें और ग्रंथमें जो कहीं मेरी बुद्धिके दोषसे वा प्रमादसे तथा प्रेसके दोषसे अशुद्धि रहगई हो उसकी सूचना मुझे देवें जिस्से द्वितीयावृत्तिमें सुधार दिई जावे ।

श्रीयुत गंगाप्रसाद अग्निहोत्रीजीको और श्रीयुत मान्यवर पाद्री ब्राउन साहबको तथा श्रीयुत धर्म्म परायण गोब्राह्मणप्रतिपालक परमकारुणिक खेमराज जी को अंतः करणसे धन्यवाददेता हूं क्योंकि गंगाप्रसादजीके कहने हीसे मेरा ध्यान इस ओर प्रवृत्तहुआ और जब ग्रंथ बनकर तैयार हुआ तब मेरी प्रार्थनासे अपना अमूल्य समयलगाकर श्रीयुत पाद्री ब्राउन साहबने उसे देखा यद्यपि इन्होंने पूर्णग्रंथ तो नहीं देखा तथापि जिन २ स्थलोंको मैंने देखनेको कहा उन्हें उन्होंने ध्यानपूर्वक देखा और कहाकि ठीक है तथा श्रीयुत खेमराजजीने इसे अपने धनसे छपवाकर प्रकाशित किया इसलिये इन तीनों महानुभावोंका मैं कृतज्ञ हूं ।

पं० विश्वेश्वरदत्तशर्मा.
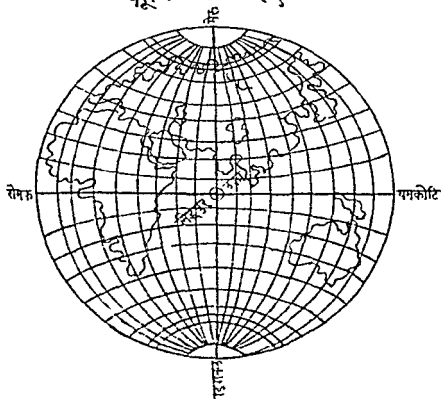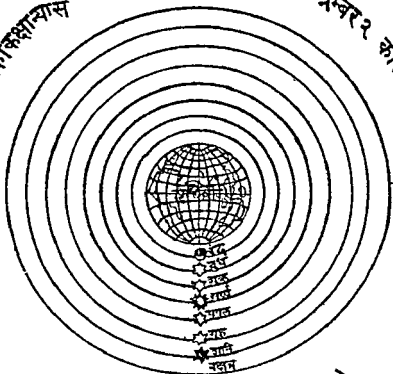
पृष्ठ ९ से १५ तक पढ़ो.

प्राचीनमतकाकक्षान्यास
नम्बर २ काचित्र.
नवीनमतकाकक्षान्यास.
नम्बर ३ काचित्र.
सूर्य्य
पृ॰२१से२८
तकपढो.
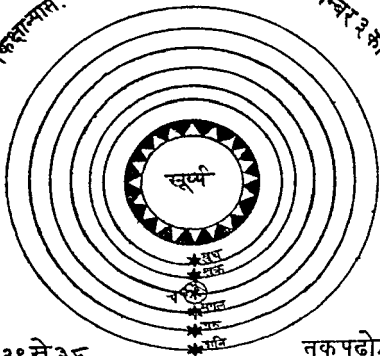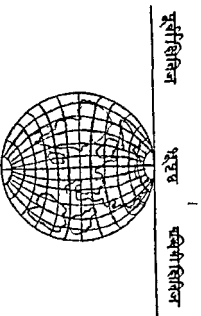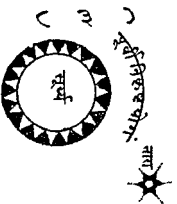
नम्बर ४ का चित्र.

पृष्ठ २९ वाँ पढो.

नम्बर ५ का चित्र.

पृष्ठ २१ वाँ पढो.

नम्बर ६ का चित्र.

गुम्बज

तार

गोला

सुई

भूमिरेखा

पृ: ३९ से- ४० तक पढो.

विषुवरेखापर सूर्य
नम्बर ७ का चित्र.
ज्योतिपुंज
उत्तर
विषुव रेखा
दक्षिण
उत्तरायणका चित्र
नम्बर ८
ज्योतिपुंज
विषुव
उत्तर
दक्षिण
दक्षिणायनका चित्र.
नम्बर ९
ज्योतिपुंज
उत्तर
विषुव
दक्षिण
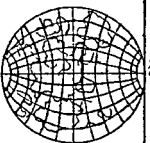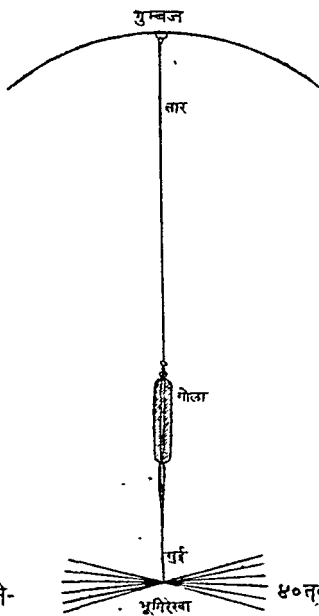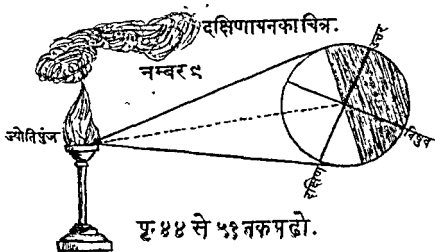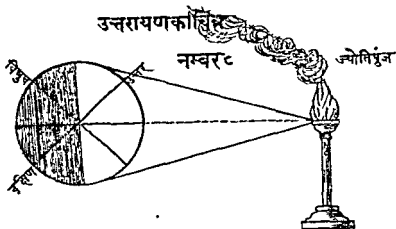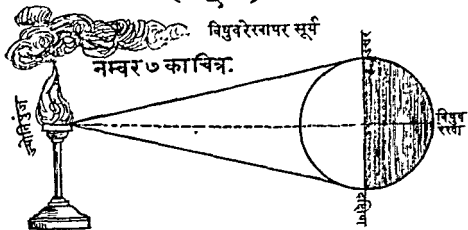
पृ. ४४ से ५१ तक पढ़ो.

मुख्यऋतुसूचकचित्रम्
नम्बर१०

पृष्ट५८से ६३ तक पढो·

चन्द्रकला वृद्धिक्षयबोध चित्रम् नम्बर ११

शुक्लपक्ष

कृष्णपक्ष

पृथिवी

पृ. ६४ से- ७० तक पढो.
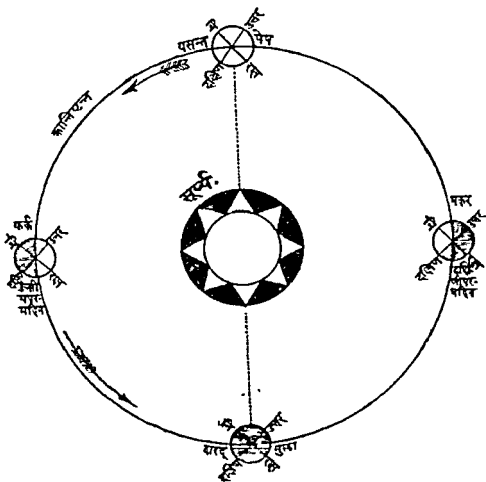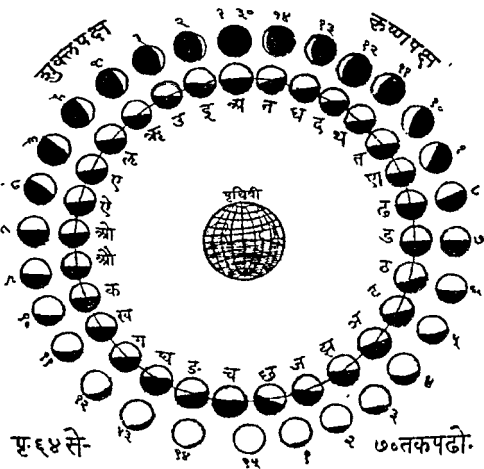
सूर्यग्रहण सर्वलीन चित्र नम्बर १२
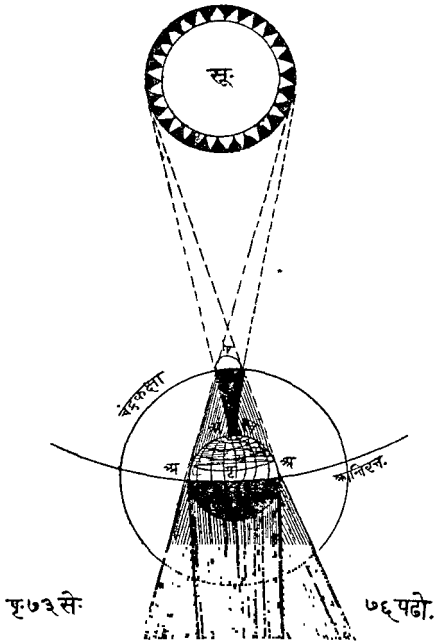
कंकणाकृति सूर्यग्रहणका चित्र नम्बर १२

पृ. ७६ से ७८ तक पढो.

चन्द्रग्रहण चित्र नम्बर १४

सू:

क्रान्तिवृत्त

पृ-७८ से ८२ पढो.
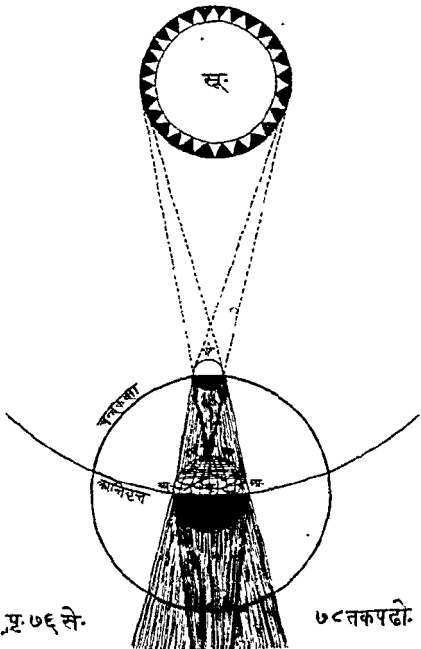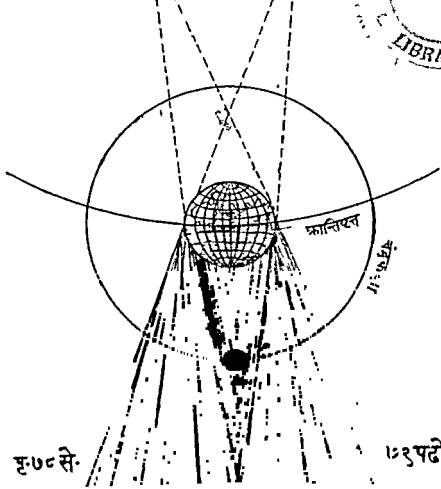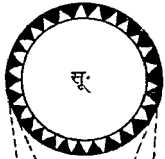
ग्रहगतिबोधकचित्र.

नम्बर १५
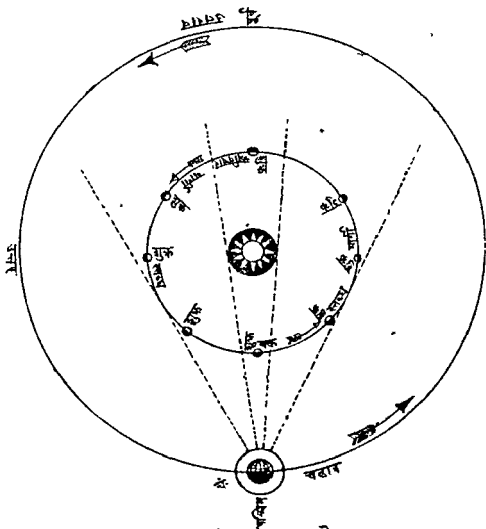
पृ० ८८ से ९१ तक पढो.

श्रीः ।

गोलतत्वप्रकाशिका ।

अवतरणनिरूपणम् ।

इस संसार में मनुष्य को उसकी सेवानुरूप फलप्राप्तिके विषयमें केवल धन वैभवादिही नहीं देखा जाता वरन यहांतक देखा जाताहै कि सेवक अपनी सेवाके प्रभावसे सेव्यजनपर पूर्णाधिकार जमा लेताहै । इसबातके प्रमाण प्रजापर अधिकार जमानेवाले राजाके सिवाय वर्णत्रयकी समाजपर अधिकार जमानेहारे ब्राह्मण और परमपुरुषपर हुक्म चलानेहारे दशरथ वसुदेवादि नाना भक्तजनभी होगयेहैं । इसप्रकार सेवाका फल मेवाखाना जो कहाजाताहै सो बहुत ठीकहै परन्तु उस फलके भोगनेके समय जितना सुख उपजताहै उतनाही वा उससेभी अधिक फलप्राप्तिके लिये सेवाधर्मका पालन करना मनुष्यको दुःखजनक जानपड़ताहै । इसबातके अनुभवी गोस्वामी तुलसीदासजी सच कहतेहैं कि "हरगिरितेगुरु सेवकधर्म्मू" इतनी बडी कठिनताका मुख्यकारण तद्योग्य बुद्धिसाधनका न होना अथवा अल्प होनाहीहै । क्योंकि इस संसारमें यद्यपि सेवाके नानारूपहैं तथापि उन सभोंका भार "स्वामिहितसाधन" केवल एक इसी मूलवस्तु परस्थितहै । इसलिये हम सेवावृत्तिकी उपमा अनेकन शाखा प्रशाखायुत वृक्षसे देतेहैं । प्रत्येक फल चाहनेहारे सेवकको सेवावृत्तिरूपी वृक्षके मूलकी ओर अधिक ध्यान रखनाचाहिये । यदि सेवक अपनी अगाधबुद्धिरूप कूपसे युक्तिरूप जलको काढ़काढ़ वृक्षके मूलकोसींच ताहै तो उसकी शीतल छायामें रहताहुआ वह अवश्यही समयपर उसके फल को पावेगा । इससे प्रगटहै कि फल चाहनेहारे सेवककी बुद्धि हनुमान्‌जीकीसी अगाध होनी चाहिये ॥

जब यहीबातहै कि सेवा करनेके लिये समुद्रसी अथाहबुद्दि होनी बहुत अवश्यहै। तब क्या मुझ मंदमतिपर जो वर्णत्रय समाजसेवी बननेकी प्रार्थना करनेके लिये समाजके संमुख उपस्थित होता हूं समाजस्थबुद्धिसागर न हँसेंगे? अवश्य हँसेंगे और मैं सचमुच उनकी दृष्टिमें हँसने योग्य हूंभी परन्तु मैं क्या उस चतुर बनियेके नमूनेपर अपनी परंपरागत वृत्तिका पालन न करूं जो हजारों लखपतियों करोड़पतियोंको देखकरभी अपनी दसबीस रूपयेकी पूँजीके अनुसार लोनगुड़की दुकान कर सत्यताके साथ व्यापार करता हुआ अपनी परंपरागतवृत्ति पालन करताहै। ऐसाकरना मेरे लिये न केवल अपनी वृत्तिका पालनहीहै वरन उन बुद्धिसागरोंके समान बननेका श्रीगणेशाय नमः भी है। जब यह ध्रुवहै कि उन्नतिके मार्गका एकमात्र यही साधनहै तो उसमें विलंब क्यों किया? इसमेंभी एक भारी कारणहै। जैसा राजा वा राजकुमार विद्रोहियोंके साम्ने जानेमें प्राण जानेके भयसे उनके समझानेको एकाएक उनके बीच नहीं जाता वैसाही मैंभी समाजमें विद्रोह देख भयसे छिपा रहा। आजकल जो वर्णत्रय समाजी हमको देखकर अभिवादन नहीं करते अभिवादन करना तो दूर रहा वरन देखतेही कुत्तेकी भांति धुतकारते और गालियोंके फव्वारे छोड़ते हैं क्यायह ब्राह्मणोंसे उनका विद्रोह करना नहींहै॥

इतने दिन पीछे मुझमें जो समाजियोंके बीच जानेका साहस हुआ उसकाभी हाल सुन लीजिये। जबकि मैं समाजियोंके बीच जानेमें प्राण जानेका भय तथा न जानेसे वृत्ति छिनजानेको देखता हुआ कि कर्तव्यविमूढ़ होकर अपनी दुर्दशापर घरमें घुसाघुसा आंसू बहारहाथा तब एक दिन मेरी सहधर्म्मिणी मुझसे सम्बोधनकर कहनेलगी हे प्राणनाथ? तुम कबतक कायरकी भांति घरमें घुसे रहोगे। यदि ऐसेही पड़े रहोतो निश्चय जानो कि पुस्तैनी जायदाद जो अपने बड़ेबूढ़े अनवरत परिश्रम करके बांध गये हैं उससे हाथ धो बैठोगे और उसके चली जानेसे तो अवश्य ही भूखसे मरजाओगे। सम्मुख जानेमें तो मरनेका खटकाही है पर घरमें घुसकर बैठनेसे अवश्यही मृत्यु है। जो कुछ मुझे कहना था सो मैं

कहचुकी अब मानना न मानना तुह्मारा काम है । यह सुनकर मैंने एक लंबी सांस ली और फिर बोला हे प्यारी! मुझे तो बड़ा भय लगता है क्योंकि हम लोगोंके जिस कर्त्तव्य पालनके न करनेसे प्रजाका रोष भड़क उठा है उसमें मैं अधिक दोषी हूं । अब तूही बतला कि कैसे सामने जाऊं । वह बोली तुम इतने अधीर क्यों होतेहो जो मैं उपाय बतलाती हूं उसे करो ईश्वर तुह्मारा कल्याण करेगा मैंने पूछा क्या? उसने कहा तुम कुछ भेंटलेलो और हाथ जोड़ उनके सामने जाओ तथा दीन वचन बोलो। इस प्रकार तुह्मारे करनेसे वे अवश्य तुमपर दया करेंगे । क्योंकि वे दयावान् पिताके सन्तान हैं । क्या हुआ जो रूठ गये हैं । जल प्रकृतिसे ठंडा होता है कारण वस यदि गरम होभी जावे तो कारण के दूर होजानेसे और थोड़ीही वयार डोलानेसे पुनः शीतल हो जाता है । इतना कहकर वह फिर बोली कि यदि इतना करनेपर भी वे शांत होते न जानपड़ें और कुछ गाली गलौज करेंतो तुम चुपचाप घर लौटआना । उसकी यह बात युक्तियुक्त सुनकर मेरे मनमें भी साहस आगया और उनकी भेंटके लिये विचारने लगा कि क्या लेजाऊं ? इसप्रकार सोचते सोचते मेरे मनमें एकाएक यह आया कि भारत भूमिसम उर्वरा संस्कृत भाषा भूमिमें जो पंचायती ज्ञानवाटिका लगी है उसमेंके कुछ फल भेंटमें ले जाऊं । क्योंकि उस वाटिकाके फल अत्यन्त मधुर होनेसे उनको प्रिय लगेंगे। अब मैं ज्ञानवाटिकाकी ओर चला । परन्तु जब मैं वहां पहुंचा तो देखा कि वाटिकाका फाटक बन्द है । मैंने उन वज्रसम कपाटोंको उघाड़ना चाहा पर क्या शक्ति मेरी कि उसे खोलसकूं । इसप्रकार प्रयत्न करते करते मैं तो थकगया पर फाटकका खुलना तो दूर रहे च्यूंटी जानेतक की संधि उसमें न हुई । लाचार मैं वहीं बैठ गया और देखने लगा कि यदि कोई दीख पड़े तो उससे विनती कर कराके फाटक खुलवा लेऊं । जब मैं ऐसा सोच रहाथा उसी समय एक महापुरुष मेरे भाग्यसे वहां आनिकले । मैंने उनसे फाटक खोल देनेकी विनती किई उन्होंने भी मेरी दीनतापर दया करके

फाटक खोलदेनेका वचन दिया और उसके खोलनेमें यत्न करनेलगे। प्रथम तो उन्होंने अपनी कुंजीसे उस फाटक की बिलाई हटाई तत्पश्चात् बलपूर्वक उन कपाटोंको कुछेक हटाके मेरे घुसनेयोग्य संधि करदी। जब वे इस भांति फाटक खोलनेका प्रयत्न कररहेथे उसी समय मेरी दृष्टि फाटकके ऊपरी भागमें पड़ी तो देखाकि उसमें लिखा है कि इस फाटकके बनानेहारे पाणिनि, कात्यायन, और पतंजलि ये तीन कारीगर हैं। उनकी कारीगरी तथा फाटककी दृढताका वर्णन करनेमें मैं वैसा लाचार हूं जैसा पर्वतलंघन में लंगडा लाचार होता है अस्तु॥

अब मैंने घुसनेका मार्ग पाकर वाटिकाके भीतर प्रवेश किया। प्रवेश करतेही उस नन्दनवन सरीखी ज्ञानवाटिकाके कल्पवृक्षोपम वेलि वृक्ष हरे भरे मेरी दृष्टि पडने लगे। जिनकी शाखाओंपर बैठीहुई रंगबिरंगी चिडियाएं अपनी मधुर मनोहर चहचहाटसे वाटिकाविहारी जनोंके आनन्दको पग पग पर बढा रही हैं। वाटिकाकी इस अद्भुत अनुपम शोभाको देखतेही ठिठककर मैं आनन्दविह्वल हो बोल उठा अहा यह कैसा मनोरम स्थान है जहां आतेही संसारी जीव अपना सब प्रकारका दुःख ताप भूलकर वर्णनातीत सुखका अनुभव करसकताहै धन्य यह वाटिका, धन्य धन्य इसके रोपनेहारे।इतना कहकर जब मैं आगे बढा तो मेरी दृष्टि सामने लगीहुई एक दाखलताकी टट्टीपर पड़ी। मैंने जाकर दाखके कुछेक गुच्छे तोड़कर खाये। आहा उस अलौकिक अनूठी मीठी दाखके स्वादको मैं किसप्रकार वर्णनकर उसके रसके अनभिज्ञ लोगोंको समझाऊं क्या कभी कोई ब्रह्मसुखानुभवी महापुरुष अपनी शक्तिभर वर्णनकरके भी संसारानुरागी जनोंपर ब्रह्मसुखको प्रगट करसकताहै ! कदापि नहीं। फिर मैंने यह जाननाचाहा कि इसलताका लगानेहारा कौनहै। इधर उधर घूमकर देखनेसे मुझे कुछ लिखाहुआ और टट्टीके सिरेपर चिपकाया हुआ एक पत्र दिखाई पडा उसमें यह लिखा था कि इस लताके बीज बोनेहारे महर्षि वाल्मीकिजी हैं परन्तु उनके पीछे कालिदास भवभूति आदि अनेक भद्रपुरुषोंने इसको सींच सींच लोकोपकारार्थ बढाया है॥

जब मैं उसे देख चुका तब मेरी दृष्टि वाटिकाके एक किनारे लगे हुए ऊँचे ऊँचे नारिकेल वृक्षोंपर जापड़ी। जिनमें बड़ेबड़े और गोलगोल फल लगेथे मैं उसी ओर को बढ़ा वहां पहुँचकर मैंने देखा कि इन वृक्षोंके फल वैसी सुगमतासे नहीं मिलसकते जैसे दाखलताके फल मिलजातेहैं तौभी इनका स्वाद तो चखनाही चाहिये। क्योंकि जिस किसी महात्माने इन्हें ज्ञानवाटिकामें लगायाहै उसने अवश्यही कुछ न कुछ इन फलोंके स्वादमें उत्तमता देखी होगी नहीं तो वह क्योंकर इन दुष्प्राप्य फलोंके वृक्षोंको रोपकर वाटिकाकी भूमिको संकीर्ण करता। इस भांति मनमें ठान उन फलोंके तोड़नेकी मनसासे पेड़पर चढ़नेलगा। नारिकेल वृक्षपर चढ़ना कितना कठिन है इसके समझानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने नारिकेल वृक्ष देखाहै वे सहजही मेरे परिश्रम तथा साहसका अनुभव कर सकतेहैं। अस्तु जैसे तैसे रामराम करके मैं उन गगनचुम्बी फलोंतक पहुँचा और उनमेंसे कितेक फलोंको तोड़ धीरे धीरे नीचे उतर आया और उन तोड़े हुए फलोंमेंसे एक फलकी बूचको बड़े परिश्रमसे छूरी द्वारा निकाल नरेहटी फोड़ उसे खाया खाते ही उसके माधुर्यसे मेरा मन इतना सन्तुष्ट हुआ कि उस तोड़ने और छीलने छालनेमें जो परिश्रम हुआ था सो सब भूलगया और यही निश्चय किया कि इन्हीं फलोंको भेंटके लिये लेचलना चाहिये। क्योंकि दाख यद्यपि अतीव मिष्ट है परंतु वह सुलभ होनेके कारण लोगोंके खानेमें प्रायः आतीहै किंतु इन नारिकेलफलोंका स्वाद प्रायः लोगोंको भूलसागया है। क्योंकि प्रथम तो इनका तोड़नाही बड़ा कठिनहै। फिर उससेभी कठिन इन जटिल फलोंकी जटाका दूर करना है अतएव अनूठा स्वाद होनेसे ये नारिकेलफल दाखकी अपेक्षा अधिक सन्तोषजनक होंगे। ऐसा सोचकर मैंने उन तोड़ेहुए फलोंकी जटाको छील छीलके सब निकाल डाली फिर उन गोलोंकी एक छोटीसी गठरी बाँधलिई और घरकी ओर चला। यद्यपि वाटिकाका अभी अधिक भाग घूमना शेष था पर मैं जो इन फलोंके तोड़ने ताड़नेसे थकगया कुछ तो इसकारणसे और कुछ अपने अभीष्टकार्यमें विलम्ब होता हुआ जानकर शेष वाटिकाका घूमना दूसरीबारके लिये

छोड़ सीधा घरही की ओर चलतावना । हां चलते चलते मैंने उस वाटिकाके एक किनारेपर जो धर्म्मक्षेत्र नामक भूमिखंडपर अठारह बीघेकी लंबाई चौड़ाईमें ईखकी उपज खड़ी थी उसमेंसे दो चार गन्ने तोड़लिये और घरमें उन्हें ला साफकर शंकाके सरौतेसे काट काट उनके टुकड़े किये । तदनन्तर उन्हें युक्तिके यंत्रसे पेरकर विचारकी कड़ाहीमें उसरसको डालदिया फिर धृतिके चूल्हेपर कड़ाहीको धर नीचे विद्याकी आग सुलगाई उसमें प्रमाणका ईंधन झोंक झोंक रसको औटने लगा उस समय उसमें गुरुभक्तिरूपी गायके धर्म्मरूपी दूध का छींटा देदेकर उफनाते हुए मैलके गुब्बारको उपकारकी कर्छीसे काढ़ काढ़ अलग करता गया । इस भांति जब शुद्ध मिस्रीकी चासनी तैयार भई तब उसे उतार शांतिके पंखेसे ठंडीकर लिई । फिर उस मिस्रीके कुछेक डले भी उसी फलकी गठरीमें बाँधदिये । इस भांति सब साज तैयार होजानेपर समाजके साम्ने जानेको मैं लैस हुआ । चलनेसे पहिले मैंने मनमें भगवान् रामचन्द्रजीका ध्यान किया पीछे समाजकी ओर पयान किया ॥

जब वहां मैं पहुँचा तब देखा कि समाजको समझानेके लिये मुझसे पहिलेही कतिपय महानुभाव समाजके साम्ने उपस्थित हैं । उनमेंसे जिनजिन भद्रपुरुषोंका नाम जानताहूं. उन्हें मैं लिखेदेताहूं । पण्डित दीनदयालु शर्म्मा व्याख्यान वाचस्पति, पण्डित ज्वालाप्रसादजी, राममिश्रशास्त्री, शिवकुमार शास्त्री, स्वामी हंसस्वरूप, स्वामी आलाराम, स्वामी ज्ञानानन्दजी, आदि अनेक पण्डितोंके सिवाय सनातन धर्म्म पताका भारतामित्र, वेंकटेश्वर, प्रयागसमाचार आदि समाचारपत्रोंके संपादक गणभी वहां डटेहैं । इन अप्रतिम प्रतिभाशालियोंको देख मुझे बड़ा हर्ष हुआ मैं भी इनके पीछे एक कोनेमें चुप चाप खड़ा होकर इन महात्माओंकी कारखाईको देखने लगा । परन्तु बड़े दुःखका विषय है कि जो महात्मा समाज सुधारनेको एकत्रित हुए हैं उनमेंसे कोई कोई ऐसे भी हैं जो धर्म्मके वेशमें अपना स्वार्थ ऐसा छिपाये हैं जैसा यतीके वेशमें राक्षसराजने अपने दुष्टाभिमायको छिपाया था पर धन्य है अपना कर्त्तव्य पालन करनेहारे समाचार-

पत्र सम्पादकोंको जो अपने लेखनी रूप प्रखर अंकुशसे उन छद्म वेषधारी स्थूलकाय मदपूर्ण मातंगोंका कुंभस्थल विदीर्ण कर करके उन्हें मार्गपर चलानेका प्रयत्न करतेहैं ॥

योंतो सभीका प्रयत्न सराहनीयहै और सभी धन्यवादके भाजनहैं जो समाज सुधारनेमें लवलीन हैं पर व्याख्यानवाचस्पतिजीका प्रयत्न अतिश्लाघनीय है । जिस समय वे समाजके संमुख खड़े होकर मेघगंभीर मधुर मनोहर वाणीसे समझाना आरंभ करतेहैं, उस समय क्षणक्षणपर प्रतिपाद्य विषयकी विद्युल्लता लहराने लगती है जिससे समस्त श्रोता शिखी जयजय वा धन्य धन्यकी केका ध्वनिसे दशों दिशायें गुंजायमान करदेते हैं । जिस समय यथार्थनामा दीनदयालुकी दयाके बादल उमड़घुमड़के दीन भारतवासियोंके हृदयस्थलपर वचनामृत विन्दुकी वर्षा करते हैं उस समय उनकी मुर्झाई हुई धर्म्मलता पुनः लहलहाने लगतीहै ॥

इस प्रकार उनकी उत्साह और साहस पूर्ण काररवाईको देखकर मारे हर्षके मेरे नेत्रोंसे अश्रुधारा वह निकली । मैं मन ही मन ईश्वरको धन्यवाद देकर कहने लगा हे दीनबंधु दयासिंधु यद्यपि हमलोगोंने भोग विलासमें पड़कर तुझे एकबारगी विसरादिया पर तू जो दीनानाथ है हमदीनोंको एकवारभी नहीं विसराया । जब जब इस धर्म्मवृक्षकी जड़ पर दुष्टोंका कठिन कुठाराघात हुआ तबही तब किसी न किसी व्यक्तिविशेषमें अपनी शक्ति डालकर उन दुष्टोंका दमन करके धर्म्म वृक्षको अमन चैनसे रक्खा है ॥

जिस समय मैं ऐसा मनही मन गुनगुना रहाथा उसी समय समाजमेंसे एकने मेरी ओर देखकर पूछा तू कौन हैरे, । मैं मारे डरके जल्दीसे बोल उठा महाराज आपलोगोंके दादे पड़दादे सड़दादेका पाला हुआ एक सेवक। उसने फिर पूछा तू कहां रहताहै और तेरा क्या नाम है । मैंने कहा महाराज जन्मतो मेरा प्रयागके पास सहिजादपुरमें हुआ है पर इस समय मध्यप्रदेशकी हरदा तहसीलमें रहताहूं और मेरा नाम विश्वेश्वरदत्त है । उसने फिर पूछा तेरी'गठरीमें क्या है । मैं जल्दीसे बोलउठा आपलोगोंके लिये कुछ

गोले लायाहूं । यह सुनतेही उसने कुछ और ही समझकर तिवर्ग चढ़ाके बोला क्या कहा गोले । मैं उसके मनका भाव समझकर जल्दीसे बोल उठा महाराज ये तोपके गोले नहीं हैं किन्तु आप लोगोंकी ज्ञानवाटिकाके नारिकेल वृक्षके फलके गोले हैं आप लोगोंकी भेटके लिये लाया हूं । इतना कहकर मैंने उन गोलोंकी गठरी समाजकेसाम्ने रखदिई । फिर उसने पूछा क्या तू वाटिकासे आताहै ? मैंने उत्तरदिया हां महाराज । तब उसने मुझसे पूछा वाटिकाका क्या समाचार है? मैंने साविनय निवेदन किया महाराज वाटिका तो संसारमें अपने गुण और शोभाकरके अद्वितीय है परन्तु आपलोगोंके ममता छोड़देनेसे सर्वगुण सम्पन्न रूपवती उस स्त्रीके समान उदास दीखतीहै, जिस अभागिनीके पतिने वेश्याओंके फंदेमें पड़कर उसपरसे प्रीति हटालिईहो । इतना सुनकर उसने मुस्कुराकर पूछा तू क्या चाहताहै ? मैंने हाथ जोड़कर निवेदन किया केवल आप लोगोंकी कृपा क्योंकि ऐसा कहा है " सबहिं सुलभजगजीव कहँ भये ईशअनुकूल" और यदि आपकुछ देनाही चाहते हैं तो जो सेवा मेरे बाप दादे करते आये हैं उसीके करनेकी मुझे भी आज्ञा दीजिये । यह सुनकर उसने कहा अच्छा हम पहिले तुम्हारी लाई हुई भेंटके गोलोंको चक्खेंगे पीछे जैसा उचित समझेंगे वैसा करेंगे तुम जाओ । मैं भी सबको आशीर्वाद देकर वहांसे हट आया ॥

इति सनातनधर्म्मानुचरविश्वेश्वरदत्तशर्म्मविरचितगोलतत्त्वप्रका-
शिकायामवतरणनिरूपणोनाम प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः ।

श्रीः ।

अथ धराकारनिरूपणोनाम द्वितीयःपरिच्छेदः

दोहा—रामचन्द्रपद वंदिकै वहुरि गुरुहिं शिरनाय ।
गोलतत्त्व परकाशिका रचूं पढ़त भ्रमजाय ॥१॥

इस पृथिवीको जिसपर हम सब बसतेहैं साधारण लोग चक्कीके पाट सरीखी चपटी और गोल समझतेहैं । उनके ऐसा समझनेके दो विशेष कारण हैं । प्रथमतो यह है कि उनको उसका ऐसा रूप दिखाई पड़ताहै । दूसरा कारण यह है कि पुराणोंमें किसी कारण विशेषसे ऐसाही वर्णित है । सो जब कि साधारण लोग अपनी आंखसे पृथ्वीका चपटा रूप देखते हैं और पुराणोंमें वैसाही सुनते हैं तब उसका रूप देखे सुनेके समान चपटा मानलेना उनके लिये स्वाभाविक बात है परंतु यदि इन आंखोंसे देखकर मानी हुई वस्तु सदा सच ठहरती होती तो उनका पृथिवीका ऐसा रूप मान लेना भूल न कहा जाता किंतु ऐसा नहीं होता। हम देखते हैं कि बहुत समय ऐसा होताहै कि जो कुछ हम इन चर्म्म-चक्षुओंसे देखकर पहिले मान बैठते हैं सो पीछे झूठा ठहरता है । जैसा कि मुलम्मेकी वस्तुओंको सोनेकी मान लेना निदान परीक्षा करनेसे मुलम्मा सोना नहीं ठहर सकता । इस बातसे यह सिद्ध होताहै कि वस्तुओंके यथार्थ रूप पहिचाननेके लिये चर्म्मचक्षुओंसे अधिक ज्ञान चक्षुकी आवश्यकताहै । अब रहा आप्तवचन अर्थात् बड़े बुजुर्गोंके वचन। उसके विषयमें यह बात है कि जिस अदृष्ट बातको समस्त महात्मा लोग एकस्वरसे भली वा बुरी कहतेहों उस बातको बुद्धिमें न आनेपर भी वैसाही मानना चाहिये । उसमें तर्क वितर्क करना उचित नहीं है । क्योंकि हम अल्पज्ञ हैं और वे विशेषज्ञ उनकी दूरदर्शिताको हम नहीं पहुंच सकते परंतु जिस बात पर इनमें मतभेद हो उस बातमें हम बड़ी सावधानीसे जहांतक हमारी बुद्धिकी दौड़ हो जांचकरें और जो यथार्थ जानपड़े उसे मानें ॥

पृथिवीके स्वरूप वर्णनमें हमारे यहां भेद सा जान पड़ताहै । क्योंकि पुराणोंमें पृथिवीका रूप गोल परंतु चपटा* कहाहै और ज्योतिष शास्त्रके सिद्धान्तग्रंथोंमें उसके रूपकी गोलाई कदम्बके फूलकी सी कही गईहै । दोनों आप्त वचनहैं । पुराणभी महर्षि प्रणीत हैं और ज्योतिषके सिद्धान्त ग्रंथभी महर्षिप्रणीतहैं । ऐसी दशामें हमें जांचना चाहिये कि कौन ठीकहै ॥

प्रथम हम पुराणके समान मानलेतेहैं । क्योंकि वैसाही दीखता भी है परंतु ज्योतिषके आचार्योंने ये शंकाएं की हैं । यथा लल्लसिद्धान्तमें यह श्लोक है ॥

श्लोक—समता यदि विद्यते भुवस्तरवस्तालनिभा बहूच्छ्रयाः कथमेव न दृष्टिगोचरं नुरहो यान्ति सुदूरसंस्थिताः ॥ १ ॥

अर्थ—लल्ल आचार्य पृथिवीका चपटा रूप माननेहारोंसे पूछते हैं कि यदि पृथिवीका रूप सम अर्थात् चपटा है तो ताड़ वृक्ष सरीखे बहुत ऊंचे२ पेड़ दूरवाले मनुष्योंको क्यों नहीं दिखाई पड़ते ॥

फिर भास्कराचार्य भी निज सिद्धान्तमें उनसे ऐसा प्रश्न करतेहैं ॥

श्लोक—यदि समा मुकुरोदरसंनिभा भगवती धरणी तरणिः क्षितेः । उपरि दूरगतोऽपि परिभ्रमन् किमुनरैरमरैरिवनेक्ष्यते ॥ १ ॥ यदि निशाजनकः कनकाचलः किमु तदन्तरगः सनदृश्यते। उदगयं ननु मेरुरथांशुमान् कथमुदेतिच दक्षिणभागके ॥

अर्थ—यदि पृथिवी मुकुर (आइना) केपेटे समान चपटी है तो पृथिवीके ऊपर अथच दूर घूमताहुआ सूर्य मनुष्योंसे देवतोंकी भांति क्यों नहीं देखाजाता। [अर्थात् जैसा देवतालोग छः महीनेतक लगातार सूर्यको देखते

---

* यद्यपि पुराणोंमें कहीं स्पष्ट शब्दोंसे नहीं लिखाहै कि पृथिवी चपटी है परंतु जो हम लिखे हुए की भावना मनमें लातेहैं तो ऐसाही प्रतीत होताहै ।

रहते हैं अतएव उनका छः महीनेका दिन होता है वैसा मनुष्योंसे क्यों नहीं देखाजाता ॥ १ ॥

यदि कहो कि सोनेका पहाड़ जो मेरु है उसकी ओटमें होजानेसे हमारे यहां रात होजातीहै । इसलिये देवतोंकी भांति हमको छः महीने तक नहीं दीखसकता । पर देवते मेरुके ऊपर रहनेसे उसको देखसकतेहैं । इसपर भास्कराचार्य ऊपर लिखे हुए दूसरे श्लोकमें फिर पूछते हैं कि यदि रातका करनेवाला सोनेका पहाड़ तुम्हारे मतमें है तो बतलाओ वह पहाड़ही क्यों नहीं दीखता ? अर्थात् इतना ऊंचा पहाड़ समभूमि होनेसे क्यों नहीं देखपड़ता ? अवश्य दीखना चाहिये । फिर तुम तो पहाड़ उत्तरकी ओर मानतेहो । हम पूछते हैं कि सूर्य सदा उत्तरही की ओरसे उदय होता हुआ क्यों नहीं दीखता, क्यों दक्षिणायनमें दक्षिण उदय होता हुआ दीखता है ॥ २ ॥

समभूमि होनेमें ये सब बातें होनी चाहियें, परंतु ऐसा नहीं होता इसीसे जानाजाताहै कि पृथ्वीका रूप चपटा गोल नहीं है । इतना सिद्ध करके भास्कराचार्य अपने मतको प्रगट करते हुए यों कहतेहैं ॥

श्लोक–सर्वतः पर्वतारामग्रामचैत्यचयैश्चितः ॥
कदम्बकुसुमग्रंथिः केसरप्रसरैरिव ॥ १ ॥

अर्थ–चारोंओरसे पर्वत वन गाँव मन्दिरोंके समूहोंसे घिराहुआ यह भूगोल कैसा दीखताहै जैसा कि केसरोंसे घिराहुआ कदम्बके फूलकी ग्रंथि ॥ १ ॥

जिन लोगोंने कदम्बका फूल देखा है वे तो जानही गये होंगे पर जिन्होंने नहीं देखा उन्हें जानना चाहिये कि वह फूल गेंद अथवा नारंगी सा होताहै। इस प्रकारके रूप माननेमें हमारे पाठकोंको यह सन्देह होता होगा कि यदि ऐसा है तो हमारे देखनेमें चपटा रूप क्यों आताहै ? इसका समाधान भी भास्कराचार्य स्वयं लिखते हैं । यथा–

श्लोक–समोयतः स्यात्परिधेः शतांशः पृथ्वी च पृथ्वी

---

१ इस भास्कराचार्यके प्रश्नसे अति स्पष्ट है कि वे सोनेके मेरु पहाड़ विशेष होने को नहीं मानते उनके मतमें मेरुका अर्थ कुछ औरही है जो आगे पर दिखाया जावेगा ।

नितरां तनीयान् ॥ नरश्च तत्पृष्ठगतस्य कृत्स्ना समेव तस्य प्रतिभात्यतः सा ॥ ९ ॥

अर्थ-प्रत्येक गोल वस्तुकी परिधि (घेरा) का सौवां अंश (हिस्सा) सम अर्थात् चपटा दीखताहै । सो पृथ्वीका गोला अत्यन्त मोटाहै और मनुष्य उसकी अपेक्षा अत्यन्त छोटाहै । यही कारणहै कि पृथ्वीके तलमें रहनेहारे मनुष्यको वह चपटी सी प्रतीत होतीहै ॥

इस बातसे पढनेहारोंकी यह शंका कि "पृथिवीका रूप चपटा क्यों दीखताहै" जाती रही यदि इस बातके समझनेमें पाठकोंको कुछ कठिनाई जान पड़े तो वे अपने हाथमें एक गेंद वा निंबू अथवा चूड़ी कोई ऐसी गोल वस्तु लेकर उसके घेरेके सौवें हिस्सेका अनुमान बांधें और उसे ध्यानसे देखें तब उन्हें वह सौवां हिस्सा चपटा मालूम होगा । फिर वे उस गोलवस्तुके घेरेके सौवें हिस्सेकी और इस विशाल भूगोलके घेरेके सौवें हिस्सेकी जिसका मान अनुमान पचीस हजार मीलका है तुलना करें तब उन्हें स्पष्ट भासित होजावेगा कि पृथिवी क्यों चपटी जान पड़ती है ॥

इन बातोंसे पृथ्वीका चपटा आकार दीखनेका समाधान तो होगया । परंतु पढ़नेहारोंको एक संदेह और हो सकता है कि जब पृथिवीका रूप कदम्बके फूल सरीखा है और उसके चारों ओर बस्ती मानते हो तो उन मनुष्योंकी स्थिति जो हमारे स्थानके ठीक नीचे बसे हैं वैसी होगी जैसा किसी मनुष्यको छतसे उलटा लटका देवें अर्थात् उनका सिर तो नीचे होगा और पांव ऊपरकी ओर; ऐसी दशामेंवे गिरकर नीचे नीचेको क्यों नहीं चले जाते । जैसा कि हम देखते हैं कि छतसे उलटे लटके हुए मनुष्यका यदि हम बंधन खोल देवें तो वह एकदम सिरके बल धड़ामसे नीचे गिर पड़ता है । इस प्रकारकी शंकाके उठते ही पाठकोंको पृथ्वीका रूप गोल माननेमें बड़ी व्याकुलता होती होगी । सच मुच उनकी शंका व्याकुलता उपजानेवाली है, परंतु इसका समाधान भी भास्कराचार्यने बहुत सुंदर दिया है । जिसे जानकर हमारे पाठक उतनाही संतुष्ट होंगे जितना कि शंकाके उठनेसे व्याकुल हैं । यथा-

श्लोक–यो यत्र तिष्ठत्यवनीं तलस्थामात्मानमस्या उपरि स्थितंच। स मन्यतेऽतः कुचतुर्थसंस्था मिथ श्च ते तिर्यगिवामनन्ति॥१॥ अधः शिरस्काः कुदलान्तर स्थाश्छायामनुष्या इव नीरतीरे अनाकुलास्तिर्यगधःस्थिताश्च तिष्ठंति ते तत्र वयं यथात्र॥ २॥

अर्थ–जो जहां रहता है सो नीचे पृथ्वीको और उसके ऊपर अपनेको स्थित मानताहै इस कारण हर एक पृथिवीकी चौथाईपर रहनेहारे मनुष्य अपनेसे दूसरी चौथाईमें रहने हारेको तिर्च्छी अर्थात् बेंड़ा समझते हैं ॥१॥ और प्रत्येक गोलार्धके रहने हारे एक दूसरेकी अपेक्षा नीचे सिर वाले किस भांति हैं जैसा जलके किनारे खड़ा हुआ मनुष्य और उसकी छायाका मनुष्य दीखता है। सो' तिर्च्छे वानीचे रहने हारे अपनेअपने स्थानमें विनघवराहट कैसे रहते हैं जैसे यहां हम रहते हैं ॥ २॥

तात्पर्य यह है कि जो जहां रहता है वह अपने नीचे पृथिवीको विस्तारके साथ फैली हुई देखता है और ऊपर आकाशको। जैसे हम नीचे धरती ऊपर आकाश देखते हैं सो हम भी तो दूसरेकी अपेक्षा नीचे सिरवाले हैं फिर हम क्यों नहीं गिर पड़ते? सो जो कारण हमारे न गिर पड़नेका है वही कारण उनके न गिरनेका है हम सब धराकर्षणकी शक्तिसे मानो बंधे रहते हैं। हे पाठको भास्कराचार्यका चमत्कारपूर्ण उत्तर सुना और समझा कि नहीं तुम्हारी शंकाका उत्तर तुम्हारे ही सिर डाल दिया। यदि तुम्हारी समझमें अब भी न आया हो तो हम तुम्हें दूसरी रीतिसे समझाते हैं। तुमने कभी च्यूंटी या मक्खी अथवा मकड़ी वा छिपकली आदि ऐसे छोटे जन्तुओंको छतमें लगी हुई धरन वा कड़ियों पर चलते हुए देखाही होगा भला वे जन्तु क्यों नहीं गिरते इसका उत्तर तुम सोच समझके यही दोगे कि वे जिस प्रदेशमें चलते फिरते हैं वह उनके ऐसे छोटेशरीरके लिये विशाल है। वे अपनी चहुँओर उस प्रदेशको अपनी दृष्टिके अनुसार अपार समझते और वैसेही मठाकाशको

महाकाशसा जानते हैं इस लिये न घबराते न गिरते हैं। ठीक यही समाधान तुम्हारी उस शंकाका भी है ॥

कदाचित् हमारे पाठक यह कहेंगे कि अब तक जो कुछ तुमने कहा उससे हम यह मान लेते हैं कि यदि पृथ्वीका आकार गेंदसा गोल होवे तो ऐसी स्थिति होसकती है पर पृथ्वीके गेंद समान गोल होनेमें क्या दृढ प्रमाण है? हे भाइयो! इस विषयमें प्रमाण अति स्पष्ट और अनेक हैं। उनमें से एक दो हम तुम्हारे समझनेके लिये यहां पर लिखते हैं। यथा किसी एक स्थानसे पूर्व वा पश्चिमकी ओर चलकर बिन मुंहफेरे अपने सीधे मार्ग पर चलते चलते अन्तमें जहाजका उसी स्थानमें पहुंचजाना जहांसे खुला था पृथ्वीके गोल होनेमें दृढ प्रमाण है। फिर अपनी ओर आती हुई नौका का पहिले दूरसे मस्तूलका सिरा दीखना फिर क्रमक्रमसे उसका पेंदा तक दीख जाना पृथ्वीकी गोलाईमें दृढ प्रमाण है। अब कदाचित् तुम यह कहोगे कि इसप्रकारकी घटना तो नलकी सी गोलाईमें भी होसकतीहै फिर तुम्हारी गेंदकीसी गोलाईमें क्या प्रमाणहै तो उसकाभी प्रमाण सुनलो।

तुम ध्रुवताराको तो पहिचानते होगे यदि नहीं पहिचानते तो किसीसे पूछकरके ठीक पहचानलो। फिर जिस स्थानमें तुम रहते हो वहांसे उसे लक्ष्य करो और देखो कि वह क्षितिज(१)से कितने ऊंचेपर है। फिर तुम दक्खिन दूर चले जाओ। अगर चलते चलते तुम लंकामें पहुंचजाओ तो वहां तुम्हें ध्रुव ठीक क्षितिजपर दीखेगा। जैसा भोरको उदय होताहुआ सूर्यमंडल क्षितिजसे मिलाहुआ दीखताहै। यदि तुम कुछ और दक्खिनको बढजाओ तो तुमको ध्रुवतारा दीखहीगा नहीं और उधर दक्खिन दिशाके नये २ तारे दीखने लगेंगे। फिर जब तुम वहांसे लौटो तो जैसे २ उत्तर बढ़ते जाओगे वैसे २ ध्रुव तुमको क्षितिजसे ऊँचा दीखता जावेगा। यहां लों कि यदि तुम मेरु पर पहुँच सको तो तुम देखोगे कि वह वहां तुम्हारे ठीक सिरके ऊपर है। दक्खिनकी ओर जातेहुए उसका नीचे होना तथा उत्तरकी ओर जाते हुए उसका ऊँचा होना बिना पृथिवीके गोल होनेके

१ क्षितिज उसे कहते हैं जहां पृथिवीमें आकाश मिलाहुआ दीखता है।

कभी संभव होसकताहै? कभी नहीं । इन सब बातोंसे पृथिवीका गोल होना निःसंदेह प्रमाणित ठहरता है देखो चित्र नंबर १ वाला ॥

इन सब बातोंको सुन समझकर सम्भव है कि भोले भाले पाठकोंकी रुचि पुराण ग्रंथोंसे हट जावे और उनके रचनेहारोंको झूठा समझने लगें पर यह बात ठीक नहीं है । क्योंकि भागवत भारत आदि अनेक ग्रंथरत्नोंको रचनेहारे महर्षि वेदव्यासजी ऐसे वैसे साधारण पुरुष नहीं हैं । उन्होंने इन अद्भुत ग्रंथ रत्नोंको रचकर अपनी विलक्षण बुद्धिका केवल परिचयही नहीं दिया वरन इन ग्रंथोंमें युक्तियुक्त शिक्षा संयुक्त अतएव अमृतरूप मधुर मनोहर अपने वचनोंद्वारा ऐहलौकिक पारलौकिक मार्गको दिखलाकर हमारा बड़ाभारी उपकारभी किया है। इसप्रकारके उपकारी और असाधारण प्रज्ञाशाली पुरुषकी निन्दा करके हम न केवल कृतघ्न बनेंगे वरन उस मनुष्यके समान जो धूलि उड़ाकर सूर्य भगवान्‌को छिपाना चाहताहै मूढ़ और ठट्ठेके योग्यभी ठहरेंगे । हमको उचितहै कि जब हम महात्माओंके किसी विरुद्ध वचनको सुनें अथवा देखें तब उनको झूठा कहने अथवा ऐसा कहनेके बदले कि "यह उनका वचन नहीं है" उनके ऐसा कहनेका कारण खोज निकालें । क्योंकि यह बहुत साधारण बात है कि जब कोई कुछभी लिखता वा बोलता है तब किसी न किसी अर्थहीसे लिखता वा बोलता है । चाहे वह अर्थ सुगमतासे निकलता हो चाहे कठिनाईसे । जब कि यह साधारण लोगोंकी रीति है तो उन महानुभावों और अप्रतिम प्रतिभाशालियोंकी क्या चर्चा । यदि उनके किसी वचनका अर्थ हमारे हजार सिर पटकने पर भी न निकले तौभी हम उनको अज्ञानी वा अल्पज्ञ न कहकर वरन ऐसा कहें कि भाई इसका अर्थ हमारी समझमें नहीं आता इसका तात्पर्य लिखने वाला समझे हम तो सर्वज्ञ नहीं हैं कि सब कुछ जानें । यहां तक हम अपने पाठकोंको यह; शिक्षा देकर कि वे किसी महात्माको उसके वचन न समझमें आनेके कारण अथवा विरुद्ध जंचनेके कारण झूठा कहकर ठट्ठेके योग्य और पातकी न बनें; आगे उन महात्मा-

नहीं होसकता तौभी तुम रात दिन बोलते हो क्या ऐसा बोलना विना व्यवहार दृष्टिके कभी सत्य ठहरसकताहै । इन बातोंसे हमने तुम्हें सिद्धकर दिखाया कि तत्वदृष्टिसे जो सच नहीं है उसे तुम बोलते और सच भी मानते हो । अब हम यह दिखलाते हैं कि तुम व्यवहार दृष्टिसभी कोई कोई बात सच न बोलते हुए भी सच मानते हो । यथा तुम कहाकरते हो कि प्रयागसे कलकत्ता पूर्व है और कलकत्तेसे प्रयाग पश्चिम । हम कहते हैं कि यह ठीक नहीं है । क्योंकि जो स्थान जिससे पूर्व है उससे वह स्थान प्रायः पश्चिम नहीं हो सकता । हमारी यह बात सुनकर कुछ आश्चर्य मत मानो । हम सिद्ध कर देते हैं । तुम अपने हाथमें एक गेंद लो और उसके बीचोबीच एक डोरा बांधदो । फिर उसे जलते हुए दीपकके सामने ऐसा रक्खो कि उस डोराके ठीक सामने दीपक रहे और मान लो कि गेंद पृथिवी है और दीपक उदय होताहुआ सूर्य है । भला प्रथम हम यह बात सिद्ध करही चुके हैं कि तत्व दृष्टिसे गोल वस्तुमें कुछ पूर्व पश्चिम है ही नहीं पर व्यवहार दृष्टिके लिये तुम्हें पूर्व पश्चिम मानना अवश्य है । तब तुम पूर्व पश्चिम माननेके लिये यह नियम बांधोगे कि जिस ओर उदय होता हुआ सूर्य दिखलाई देवे वही पूर्व और अस्तकी दिशा पश्चिम है । अब तुम देखते हो कि यह दीपक डोरेके सामने है । सो मानो सूर्य उदय हो रहा है । जिस ओर उदय होता है ठीक उसीके सामने अस्त भी होगा । अब उस डोरेसे कुछ उत्तरकी ओर हटाके एक स्थानपर प्रयागका चिन्ह कर दो और उससे थोड़ा हटाके दीपककी दिशाकी ओर उसी गेंदमें कलकत्तेका भी चिन्ह कर दो । इतना करके अपने मनमें वह नियम स्मरण करो कि जिस दिशामें सूर्य उदय होता हुआ दीखे वह पूर्व और अस्त होनेका स्थान पश्चिम है । अब टुक ध्यान देकर सोचो कि प्रयागके चिन्ह और दीपकके बीचमें कलकत्तेका चिन्ह तो आ जाता है इस लिये कलकत्ता प्रयागसे पूर्व कहाजासकता है परन्तु कलकत्तेसे प्रयाग पश्चिम इस लिये नहीं है कि कलकत्तेसे सूर्य अस्त होता हुआ डोरेकी सीधमें दीखेगा । तब प्रयागका चिन्ह उन दोनोंके बीच नहीं आता किंतु उससे कुछ उत्त-

रकी ओर हटा हुआ है । इस प्रकार जो व्यवहारदृष्टिसे भी कलकत्तेसे प्रयागका पश्चिम बोलना असत्य है उसे तुम, तुम क्या वरन सारा संसार बोलताही नही किंतु सत्य भी मानता है। ये सब बाते तो मानलोगे पर व्यास जीने जो साधारण लोगोंके समझनेके लिये व्यवहारदृष्टिसे पृथिवीका रूप चपटा लिखा है उसके सत्य माननेमें तुम्हारा माथा ठनक्ता है ॥

यद्यपि इन अटल युक्तियोसे पुराणलिखित पृथिवीका चपटा रूप व्यावहारिक कथन सिद्ध है परतु जिनकी आखमें हठका चश्मा लगा है वे अब भी यह कह सक्ते हैं कि हम कैसे जानें कि व्यासजीने सचमुच व्यवहार दृष्टिसे कहाहै सम्भव है कि उन्होंने तत्वदृष्टिहीसे ऐसा कहाहो सो इसप्रकारके वर्णनको व्यवहारदृष्टिका वर्णन सिद्धकरनेके लिये कोई उनका तत्वदृष्टिका कथन दिखलाना चाहिये । अच्छा वह भी सुनलो । तुमने पुराणोंमें यह पढ़ा वा सुनाही होगा कि यह पृथ्वी शेषजीके मस्तकपर सरसोंके दानेके समान रक्खी जाती है। देखो व्यासजीने तिल्ली, टिकुली, पत्ती, आदि अनेक चपटी वस्तुके होतेभी जो सरसोंके दानेका दृष्टात दिया है उससे अतिस्पष्ट है कि उन्होंने पृथिवीके वास्तविक गोलरूप होनेकी सूचना दिईहै॥

आगे हम कुछ मेरुके विषय लिखकर इस परिच्छेदको समाप्त करते हैं। हे प्रियपाठको मेरुके विषय जो तुम्हारी ऐसी भावना है कि सुवर्णका कोई पहाड विशेष है यह ठीक नही है। इस बातको हम इसी परिच्छेदमें भली भांति दर्शा चुके हैं कि भास्कराचार्यजी इस प्रकारका कोई पहाड पृथ्वी- पर नहीं मानते परन्तु(मेरु) इस शब्दको वे तथा और और सिद्धान्तवेत्ता लोग भी अपने २ ग्रथोंमें बार बार लिखते हैं । ऐसे अवसरमें यह शंका उत्पन्न होतीहै कि जो वस्तु है ही नही उसका ग्रहण क्यों ? समाधान इसका यह है कि जैसा मेरु तुम मानते हो वैसा तो नहीं है पर जैसा आचार्य लोग मानतेहै वह तो अवश्य है। जब तुम पूछोगे कि आ- चार्य कैसा मानते हैं तो सुनो देखो आचार्य इस विषयमें क्या लिखतेहै ॥

श्लोक—लंका कुमध्ये यमकोटिरस्याः प्राक् पश्चिमे रोमकपत्तनं च अधस्ततः सिद्धपुरं सुमेरुः सौम्येथ

आंके पृथिवीको चपटी लिखनेका कारण यथामति लिखतेहैं । इस पर भी मैं यह कहताहूं कि जो कुछ मैं कारण बतलाताहूं सो अपनी समझके समान कहताहूं कौन जाने मेरी बुद्धि उनके गूढ आशयको ढूंढ निकालनेमें समर्थ हुई वा नहीं । पाठकोंको भी अधिकार है कि अपनी २ बुद्धिको दौड़ावें क्या जानें वे इससे भी कोई सुन्दर कारण पावेंगे ॥

बुद्धिमानोंके बोलने वा लिखनेकी दो रीतियां संसारमें लखी जाती हैं । उनका लिखना वा बोलना एक तो तत्वदृष्टिसे देखा जाता है और दूसरा व्यवहार दृष्टिसे । जिस समय वे अपनी विज्ञताको मनमें रखके बोलते वा लिखते हैं उसे उनका तत्व दृष्टिसे बोलना वा लिखना समझना चाहिये । उदाहरणके लिये हम तुलसीदासजीकी एक चौपाई लिखे देते हैं । यथा ' महि विनु गंध कि पावे कोई" पर जब वे इस रीति पर बोलते वा लिखते हैं जैसा कि साधारण रीतिसे देखा वा सुना जाता है । उसेही व्यवहार दृष्टिसे बोलना वा लिखना कहा जा सकता है । यथा गोस्वामि तुलसीदासजी लिखते हैं । " पारस परसि कुधातु सुहाई" । विना इस प्रकारके बोले वा लिखे साधारण नर नारी बाल वृद्ध सभोंकी समझमें उनका सदुपदेश आ नहीं सकता । प्रथम रीतिका बोलना तो अधिकारियोंहीके लिये हो सकता है पर दूसरा साधारण लोगोंके लिये भी होता है । बस इसी व्यवहार दृष्टिका आसरा लेके महर्षि वेद व्यासजीने आबाल वृद्ध नर नारियोंके समझनेके लिये पृथिवीके प्रासंगिक वर्णनमें उसका चपटा आकार बतलाया है । यदि इस प्रकारके बोलने वा लिखनेको तुम झूठ समझोगे तो तुम्हारे मतमें सृष्टिके आदिसे आजलों सब झूठेही ठहरे । बल्कि इस दोषसे तुम आपही खाली नहीं हो । क्योंकि तुम तुमही क्या बरन संसारके सभी धर्म्मी, अधर्म्मी, पण्डित, मूर्ख, नर, नारी, रात दिन काम पड़ने पर पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर, और नीचे, इन शब्दोंको बोला वा लिखा करते हैं । हम कहते हैं, कि तुम्हारा इन शब्दोंका बोलना सत्य नहीं है । क्योंकि तुम इस बातको भली भांति समझही चुके हो कि पृथ्वी गेंदसी गोल है । फिर गोल वस्तुमें पूर्व

पश्चिम उत्तर दक्खिन कहां ठहर सकता है । यदि यह बात तुम्हारी समझमें न आई हो तो तुम्हारे समझानेके लिये हम तुमको युक्ति वतलाते हैं । तुम अपने हाथमें एक गेंद वा कोई वैसी गोल वस्तु लेओ और उसके एक स्थानमें सूई गाड़ दो । अब तुम उस सूईसे एक ओर पूर्व मान लो और उसकी विपरीत दिशामें पश्चिमकी कल्पना करो फिर तुम उस सूईके स्थानसे अपनी अंगुलीको इस भावनासे चलाओकि हम सीधे पूर्वकी ओर जारहे हैं । तव तुम क्या देखोगे कि तुम्हारी अंगुली जो सीधे पूर्वको चली थी चलते चलते उस दिशाको पहुँचगई जिसे तुमने पहिले पच्छिम मानरक्खाहै । अब हम तुमसे पूछते हैं कि तुम्हारी अंगुली चली तो थी सीधे पूर्वको सो वह पूर्व अब पच्छिम कैसे वनगया । ऐसेही गोल वस्तुमें नीचे ऊंचेकी सम्भावना नहीं हो सकती क्योंकि जो जहां रहता है सो वहांसे अपने पाँवके तलेकी तरफ जो कुछ है उसे नीचे समझता है और सिरके ऊपरकी वस्तुओंको ऊँचेकी मानता है । भला अब तुम रातको बाहर मैदानमें खडे होके ऊपरकी ओर देखो तो हजारों ताराओंको देखोगे और उन्हें अपने ऊपर वतलाओगे । अब कल्पना करो कि वे भी ऐसेही गोले हैं जैसा हमारी पृथिवी है और यह भी मानलेओ कि उनमेंभी हमसरीखे मनुष्य वसते हैं । तुमको गोलमें मनुष्योंके वसनेका प्रकार वतलाया जा चुकाहै कि हरएक गोल वस्तुके गोलार्द्धमें किस प्रकारसे मनुष्य रहसकते हैं । जैसा जलके किनारे खडा हुआ मनुष्य और उसकी छायाका मनुष्य अर्थात् पाँव तो दोनोंका मिलाहुआ रहेगा पर सिर एकदूसरेको भिन्न दिशामें होगा । अब तुम सोचो कि जिस तारामंडल पर तुमने पृथिवी कीसी भावना किई है उस गोलके निचले गोलार्ध वासियोंकी दृष्टिमें हमारी पृथिवी ऊपर मालूम होगी । क्योंकि यह उनके मस्तकपर है जैसे वह तारा हमारे मस्तकपर तो वतलाओ कि हम उनके ऊपर हैं या वे हमारे ऊपर । सचमुच न वे हमारे ऊपर हैं और न हम उनके ऊपर । ये सब दृश्य ईश्वरकी अचिन्त्य बुद्धिकी महिमा प्रगट करते हैं । अब देखो यद्यपि तत्वदृष्टिमें गोल रूप पृथिवीमें पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्खिन, ऊंचा, और नीचा, कुछभी

नहीं होसकता तौभी तुम रात दिन बोलते हो क्या ऐसा बोलना बिना व्यवहार दृष्टिके कभी सत्य ठहरसकताहै । इन बातोंसे हमने तुम्हें सिद्धकर दिखाया कि तत्वदृष्टिसे जो सच नहीं है उसे तुम बोलते और सच भी मानते हो । अब हम यह दिखलाते हैं कि तुम व्यवहार दृष्टिसेभी कोई कोई बात सच न बोलते हुए भी सच मानते हो । यथा तुम कहाकरते हो कि प्रयागसे कलकत्ता पूर्व है और कलकत्तेसे प्रयाग पश्चिम । हम कहते हैं कि यह ठीक नहीं है । क्योंकि जो स्थान जिससे पूर्व है उससे वह स्थान प्रायः पश्चिम नहीं हो सकता । हमारी यह बात सुनकर कुछ आश्चर्य मत मानो । हम सिद्ध कर देते हैं । तुम अपने हाथमें एक गेंद लो और उसके बीचोबीच एक डोरा बांधदो । फिर उसे जलते हुए दीपकके सामने ऐसा रक्खो कि उस डोराके ठीक सामने दीपक रहे और मान लो कि गेंद पृथिवी है और दीपक उदय होताहुआ सूर्य है । भला प्रथम हम यह बात सिद्ध करही चुके हैं कि तत्व दृष्टिसे गोल वस्तुमें कुछ पूर्व पश्चिम है ही नहीं पर व्यवहार दृष्टिके लिये तुम्हें पूर्व पश्चिम मानना अवश्य है । तब तुम पूर्व पश्चिम माननेके लिये यह नियम बांधोगे कि जिस और उदय होता हुआ सूर्य दिखलाई देवे वही पूर्व और अस्तकी दिशा पश्चिम है । अब तुम देखते हो कि यह दीपक डोरेके सामने है । सो मानो सूर्य उदय हो रहा है । जिस ओर उदय होता है ठीक उसीके सामने अस्त भी होगा । अब उस डोरेसे कुछ उत्तरकी ओर हटाके एक स्थानपर प्रयागका चिन्ह कर दो और उससे थोड़ा हटाके दीपककी दिशाकी ओर उसी गेंदमें कलकत्तेका भी चिन्ह कर दो । इतना करके अपने मनमें वह नियम स्मरण करो कि जिस दिशामें सूर्य उदय होता हुआ दीखे वह पूर्व और अस्त होनेवा स्थान पश्चिम है । अब टुक ध्यान देकर सोचो कि प्रयागके चिन्ह और दीपकके बीचमें कलकत्तेका चिन्ह तो आ जाता है इस लिये कलकत्ता प्रयागसे पूर्व कहाजासकता है परन्तु कलकत्तेसे प्रयाग पश्चिम इस लिये नहीं है कि कलकत्तेसे सूर्य अस्त होता हुआ डोरेकी सीधमें दीखेगा । तब प्रयागका चिन्ह उन दोनोंके बीच नहीं आता किंतु उससे कुछ उत्त-

रकी ओर हटा हुआ है । इस प्रकार जो व्यवहारदृष्टिसे भी कलकत्तेसे प्रयागका पश्चिम बोलना असत्य है उसे तुम, तुम क्या वरन सारा संसार बोलताही नहीं किंतु सत्य भी मानता है। ये सब बातें तो मानलोगे पर व्यास जीने जो साधारण लोगोंके समझनेके लिये व्यवहारदृष्टिसे पृथिवीका रूप चपटा लिखा है उसके सत्य माननेमें तुम्हारा माथा ठनकता है ॥

यद्यपि इन अटल युक्तियोंसे पुराणलिखित पृथिवीका चपटा रूप व्यावहारिक कथन सिद्ध है परंतु जिनकी आंखमें हठका चश्मा लगा है वे अब भी यह कह सकते हैं कि हम कैसे जानें कि व्यासजीने सचमुच व्यवहार दृष्टिसे कहाहै सम्भव है कि उन्होंने तत्वदृष्टिहीसे ऐसा कहाहो सो इसप्रकारके वर्णनको व्यवहारदृष्टिका वर्णन सिद्धकरनेके लिये कोई उनका तत्वदृष्टिका कथन दिखलाना चाहिये । अच्छा वह भी सुनलो । तुमने पुराणोंमें यह पढ़ा वा सुनाही होगा कि यह पृथ्वी शेषजीके मस्तकपर सरसोंके दानेके समान लखी जाती है। देखो व्यासजीने तिल्ली, टिकुली, पत्ती, आदि अनेक चपटी वस्तुके होतेभी जो सरसोंके दानेका दृष्टांत दिया है उससे अतिस्पष्ट है कि उन्होंने पृथिवीके वास्तविक गोलरूप होनेकी सूचना दिई है ॥

आगे हम कुछ मेरुके विषय लिखकर इस परिच्छेदको समाप्त करते हैं। हे प्रियपाठको मेरुके विषय जो तुम्हारी ऐसी भावना है कि सुवर्णका कोई पहाड़ विशेष है यह ठीक नहीं है । इस बातको हम इसी परिच्छेदमें भली भांति दर्सा चुके हैं कि भास्कराचार्यजी इस प्रकारका कोई पहाड़ पृथ्वी-पर नहीं मानते परन्तु(मेरु) इस शब्दको वे तथा और और सिद्धान्तवेत्ता लोग भी अपने २ ग्रंथोंमें बार बार लिखते हैं । ऐसे अवसरमें यह शंका उत्पन्न होतीहै कि जो वस्तु है ही नहीं उसका ग्रहण कैसे ? समाधान इसका यह है कि जैसा मेरु तुम मानते हो वैसा तो नहीं है पर जैसा आचार्य लोग मानतेहैं वह तो अवश्य है। अब तुम पूछोगे कि आ-चार्य कैसा मानते हैं तो सुनो देखो आचार्य इस विषयमें क्या लिखतेहैं ॥

श्लोक–लंका कुमध्ये यमकोटिरस्याः प्राक् पश्चिमे रोमकपत्तनं च अधस्ततः सिद्धपुरं सुमेरुः सौम्येथ

वको विलायतसे हिंदुस्तान आये दोही तीन महीने हुए थे उन्होंने अपने खानसामाको हाजिरी खानेके वक्त ऐसा कहते कि " हुजूर हाजिरी मेज़ पर " कई दिन तक लगातार सुना । तुम जानते ही हो कि अंग्रेज जाति और जातियोंकी अपेक्षा अधिक खोजू होती है और दूसरी भाषा सीखनेके वे लोग बड़े रसिक होते हैं । यही कारण है कि वे आज सबसे अधिक उन्नतिके शिखर पर चढ़े हैं । अस्तु एक दिन साहब खानसामासे पूछने लगे कि "खानशामा यह टुम क्या कहटा है कि "हुजूर हाज़िरी मेज़ पर" । खानसामाने अर्ज किया कि हुजूर इसका मतलब है कि हाज़िरी तैयार है । यह सुनकर साहब बहादुर बहुत खुश हुए और कहा वेरी व्येल् । निदान साहब शामकी वक्त जब हवा खानेको तैयार हुए तब साईसको पुकारा " साईश साईश " । साहब बहादुरका पुकारना सुनकर साईस झट पट हाज़िर हुआ और झुक कर सलाम किया । साहब उसे आया देख बोले । साईश ! गाड़ी मेज़ पर । साईस बेचारा साहबकी बात सुनकर पहिले तो अकचकागया फिर सोचने लगा शायद मैंने ठीक सुना नहीं । सो उसने डरते २ कहा हुजूर मैंने समझा नहीं । साहब बहादुरने फिर वही ज़रा ज़ोरसे कहा कि "गाड़ी मेज पर" । अब तो साईस बेचारा सिर नीचा करके सोचने लगा कि गाड़ी मेज पर क्यों कर हो सकती है । उसको वैसाही चुप चाप खड़ा देखकर साहब बहादुरको गुस्सा आगया और डांटकर बोले । साईश टुम हमारा हुक्म नहीं मानटा जाओ जल्डी गाडी मेज पर करो । उसने गिड़गिड़ाकर साहबसे कहा हुजूर मैं अकेले कैसे गाड़ी उठा सकता फिर गाड़ी बड़ी और मेज़ छोटी उस पर कैसे गाड़ी धरी जा सकती । तब साहबने समझा कि मैं कुछ भूल करता हूं । फिर खानसामाको बुलवाया खानसामा कुछ टूटी फूटी अंग्रेजी बोल-लेता था उसने दोनोंका झगड़ा निबटाया । वैसेही व्यासजीने तो कहा कुछ और ही तात्पर्यसे पर तुमने समझा कुछ और । इस प्रकार मेरुकी झूठी प्रसिद्धि होगई। उसमें तुम्हारा क्या दोष खैर कहें कबीर मैं बहुते कही । जबसे समझे तबैसे सही । इति धराकारनिरूपणो नाम द्वितीयः परिच्छेदः ।

श्रीः ।

अथ धराधारनिरूपणोनाम तृतीयःपरिच्छेदः ।

अब यह विचारनेका अवसर प्राप्त हुआहै कि यह पृथ्वीका गोला जिसपर हम सभोंकी स्थिति है सो किसी मूर्त्तिमान पदार्थपर ठहरा है वा निराधार है इस विषयमें पुराणोंमें कहींतो शेषजीके शिर और कहीं वाराहजीके ऊपर कहीं कुछ कहीं कुछ इसके ठहरनेकी बात कहीगई है । पर ज्योतिषमें पृथिवी निराधार मानीगई है । इस मतभेदसे हमारे पाठकोंका चित्त अत्यन्त डाँवाँडोलमें होगा कि इन दोनों मतोंमेंसे कौन ठीकहै । पाठक ! पृथिवी निर्विवाद निराधार है और पुराणोंका कथन रहस्यपूर्ण है । प्रथम हम तुमको पृथिवीका निराधार होना प्रमाणित करदेते हैं पीछे पुराणोंका रहस्य सुनावेंगे यदि पृथिवीका कुछ आधार मानाजावे तो यह प्रश्न उठता है कि उस आधारका आधार क्या है ? कदाचित् उसको भी कुछ आधार मानलियाजावे तो फिर प्रश्न उठताहै कि उस वस्तुका आधार क्या है ? इस प्रकार प्रश्नोंका अन्त न होगा तब अन्तमें यही मानना पड़ेगा कि पिछली वस्तु अपनी ही शक्तिसे अथवा ईश्वरकी सत्तासे ठहरीहुई है । हम कहतेहैं कि वही कल्पना जो पीछे माननी पड़ती है सो पहले ही अर्थात् पृथिवीके साथ क्यों न मानलिई जावे कि पृथिवी अपनी ही शक्तिसे ठहरी है । जैसा कि सूर्यसिद्धांतमें लिखा है यथा–

श्लोक–मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति ।
बिभ्राणःपरमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ॥ १ ॥

अर्थ–ब्रह्माण्डके बीच यह भूगोल आकाशमें ब्रह्मकी परम धारणात्मिका शक्तिसे ठहराहै ॥ १ ॥

इस भूगोलमें अपने आप ठहरनेकी शक्ति कैसी अद्भुत है । जैसे सूर्य और आगमें गर्मी, चन्द्रमामें ठंडापन, जलमें बहनेकी शक्ति, हीरेमें कठोरता और हवामें चंचलता आदि ॥

याम्ये वडवानलश्च ॥ १ ॥ कुवृत्तपादान्तरितानि तानि स्थानानि षड्गोलविदो वदन्ति ॥

अर्थ–पृथ्वीके मध्यभागमें लंका है । उस लंकासे पृथ्वीकी परिधिकी चौथाईमें पूर्वकी ओर यमकोटि नामका स्थान है । फिर लंकासे पश्चिमकी तरफ परिधिकी चौथाईमें रोमक शहरका स्थान है और लंकाके नीचे सिद्धपुर है लंकासे उत्तरकी ओर परिधिकी चौथाईमें सुमेरु नामक स्थान है और लंकाके दक्षिण परिधिकी चौथाईमें वड़वानलस्थान है।१। इस प्रकार परिधिकी एक एक चौथाईके अन्तरपर गोल जाननेहारे छः स्थान कहते हैं ॥ हे भाइयो इससे अतिस्पष्ट है कि लंकासे उत्तरकी ओरकी एक चौथाई जहां समाप्त होती है उसी स्थानका नाम आचार्योंने मेरु रक्खा है ॥

कदाचित् तुम पूछोगेकि पुराणोंमें जो मेरुका वर्णन है सो इसी स्थानके विषय है अथवा किसी दूसरे स्थानके विषयमें है । इसके उत्तरमें मेरा तो यही कथन है कि इसी स्थानके विषयमें है दूसरा स्थान आया कहांसे । यह सुन-कर यदि तुम कहो कि पुराणोंमें तो मेरु सोनेका लिखाहै सो कैसे ? इसका उत्तर यह है कि सोनेका लिखनेका अभिप्राय यह है कि सोना वहां बहुताय-तसे मिलता है अर्थात् उसके गर्भमें सोनेकी खानियां अनेकन हैं । जहां जो वस्तु अधिकतासे मिले उस स्थानको यदि कोई उस वस्तुका कहे तो कुछ अनुचित न होगा । देखो काबुलके पहाड़ोंमें मेवा बहुतायतसे उपजता है यदि कोई उन पहाड़ोंको मेवेका पहाड़ कहे तो क्या बोलचालकी रीतिपर उसका ऐसा कथन सत्य नहीं है? यदि कहो ऐसा किसीने कहाभी है कि तुमही कहतेहो तो हम प्रमाण देते हैं कि भगवान् वाल्मीकिजीने भी इसी अभिप्राय-को लेकर लंकाको स्वर्णमयी लिखाहै नहीं तो कब हो सकताथा कि धातुमय भूमिमें कोई पौधा अथवा बेल उगै क्या कभी तुमने सोना चान्दी पीतल आदि धातुओं पर किसी पौधेको जमा हुआ देखाहै ? यदि ऐसा नहीं होता यही निश्चय है तो हनूमान्जीका अशोकवनका उजाड़ना जो वाल्मीकिजीने लिखा है सो कैसे घटेगा ? यह तो हुआ ऋषिका प्रमाण । अब हम तुम्हारे मुद्दईसे कहीजाती हुई बातका प्रमाण देते हैं । तुम राजपुताना एक देशको

कहते ही हो । भला उसका अर्थ है राजपूतोंका घर जो राजपुत्रायण शब्द से निकला है । अब हम् पूछते हैं कि क्या राजपुतानेमें राजपूत ही बसते हैं? दूसरी जातिके लोग वहां नहीं रहते फिर क्यों वह राजपुताना कहलाया। इसका उत्तर तुम यही दोगे कि और जातोंकी अपेक्षा वहां राजपूत अधिक बसते हैं इसलिये वह राजपुताना कहलाया । जैसाकि ब्राह्मणोंके टोलेको बह्मनटोलिया कहते हैं । ठीक यही उत्तर हम भी देते हैं कि मेरु में सोनेकी खानि अधिक होनेसे वह सोनेका कहलाया ॥ अब क्या जाने तुम यह पूछोगे कि पुराणमें उसे पहाड़ क्यों लिखा ? उत्तर यह है कि पहाडी भूमि होनेसे ॥

अब एक प्रश्न तुह्मारा और होसकता है कि पुराणवाले उसे लक्ष योजन ऊंचा लिखते हैं सो कैसे ? इसकाभी उत्तर सुनलो । जब कोई तुमसे कहे कि फलाने मन्दिरका कलश सौफुट ऊंचा है तब तुम क्या समझतेहो यही न कि उस मंदिरकी चोटी नीवसे सौ फुट ऊंची है । ऐसेही पुराणोंमें मेरुकी ऊंचाई उसकी नींवसे लिखी है । उसकी नीव कहां समझनी चाहिये जहां पृथ्वीका दूसरा सिरा समाप्त होता है अर्थात् लंकासे दक्षिण जहां परिधिकी चौथाई समाप्त होती है । पृथिवीका ऊपरी भाग उत्तर और निचला भाग दक्षिण लिखने वा बोलने की सदाकी परिपाटी है । जैसा कि नक्शोंमें अब तक देखा जाता है । यद्यपि नीवसे भी मेरु लक्ष योजन ऊँचा नहीं है परंतु बहुत योजनके अभिप्रायसे लक्ष योजन लिखा गया है । जैसा कि लोग इस प्रकार बोला करते हैं कि "फलानेने फलानेको भरी बाजारमें लाखों आदमियोंके साम्ने गालियां दीं" तो क्या ऐसा बोलनेहारा मर्दुम सुमारी करके बोलता है ? कदापि नहीं । उस बोलनेवालेका तात्पर्य लाखों आदमीसे बहुत आदमीका है । ऐसेही पुराणमें लिखित मेरुकी लक्ष योजनकी ऊंचाईका आशय बहुत योजनका है और यह सत्य भी है । रही एक बात अर्थात् " नह्यमूलात्प्रसिद्धिः" कि विना मूल कोई बात प्रसिद्ध नहीं होती । तो मेरुके विषय जो ऐसी प्रसिद्धि है उसका मूल समझका फेर है । इस अवसर पर हम अपने पाठकोंको एक कहानी सुनाते हैं । जिससे पाठकोंको स्पष्ट भासित हो जावेगा कि यह प्रसिद्धि कैसे हुई ॥ पाठको किसी साह-

वको विलायतसे हिंदुस्तान आये दोही तीन महीने हुए थे उन्होंने अपने खानसामाको हाजिरी खानेके वक्त ऐसा कहते कि " हुजूर हाजिरी मेज़ पर " कई दिन तक लगातार सुना । तुम जानते ही हो कि अंग्रेज जाति और जातियोंकी अपेक्षा अधिक खोजू होती है और दूसरी भाषा सीखनेके वे लोग बड़े रसिक होते हैं । यही कारण है कि वे आज सबसे अधिक उन्नतिके शिखर पर चढ़े हैं । अस्तु एक दिन साहब खानसामासे पूछने लगे कि "खानशामा यह टुम क्या कहदा है कि "हुजूर हाज़िरी मेज़ पर" । खानसामाने अर्ज किया कि हुजूर इसका मतलब है कि हाज़िरी तैयार है । यह सुनकर साहब बहादुर बहुत खुश हुए और कहा वेरी व्येल् । निदान साहब शामकी वक्त जब हवा खानेको तैयार हुए तब साईसको पुकारा " साईश साईश " । साहब बहादुरका पुकारना सुनकर साईस झट पट हाज़िर हुआ और झुक कर सलाम किया । साहब उसे आया देख बोले । साईश ! गाड़ी मेज़ पर । साईस बेचारा साहबकी बात सुनकर पहिले तो अकचकागया फिर सोचने लगा शायद मैंने ठीक सुना नहीं । सो उसने डरते २ कहा हुजूर मैंने समझा नहीं । साहब बहादुरने फिर वही ज़रा ज़ोरसे कहा कि "गाड़ी मेज पर" । अब तो साईस बेचारा सिर नीचा करके सोचने लगा कि गाड़ी मेज पर क्यों कर हो सकती है । उसको वैसाही चुप चाप खड़ा देखकर साहब बहादुरको गुस्सा आगया और डांटकर बोले । साईश टुम हमारा हुक्म नहीं मानटा जाओ जल्डी गाडी मेज पर करो । उसने गिड़गिड़ाकर साहबसे कहा हुजूर मैं अकेले कैसे गाड़ी उठा सकता फिर गाड़ी बड़ी और मेज़ छोटी उस पर कैसे गाड़ी धरी जा सकती । तब साहबने समझा कि मैं कुछ भूल करता हूं । फिर खानसामाको बुलवाया खानसामा कुछ टूटी फूटी अंग्रेजी बोल-लेता था उसने दोनोंका झगड़ा निबटाया । वैसेही व्यासजीने तो कहा कुछ और ही तात्पर्यसे पर तुमने समझा कुछ और । इस प्रकार मेरुकी झूठी प्रसिद्धि होगई। उसमें तुम्हारा क्या दोष खैर कहें कबीर मैं बहुते कही । जबसे समझे तबैसे सही । इति धराकारनिरूपणो नाम द्वितीयः परिच्छेदः ।

श्रीः ।

अथ धराधारनिरूपणोनाम तृतीयःपरिच्छेदः ।

अब यह विचारनेका अवसर प्राप्त हुआहै कि यह पृथ्वीका गोला जिसपर हम सभोंकी स्थिति है सो किसी मूर्त्तिमान पदार्थपर ठहरा है वा निराधार है इस विषयमें पुराणोंमें कहींतो शेषजीके शिर और कहीं वाराहजीके ऊपर कहीं कुछ कहीं कुछ इसके ठहरनेकी बात कहीगई है । पर ज्योतिषमें पृथिवी निराधार मानीगई है । इस मतभेदसे हमारे पाठकोंका चित्त अत्यन्त डाँवाँडोलमें होगा कि इन दोनों मतोंमेंसे कौन ठीकहै । पाठक ! पृथिवी निर्विवाद निराधार है और पुराणोंका कथन रहस्यपूर्ण है । प्रथम हम तुमको पृथिवीका निराधार होना प्रमाणित करदेते हैं पीछे पुराणोंका रहस्य सुनावेंगे यदि पृथिवीका कुछ आधार माना जावे तो यह प्रश्न उठता है कि उस आधारका आधार क्या है ? कदाचित् उसको भी कुछ आधार मानलियाजावे तो फिर प्रश्न उठताहै कि उस वस्तुका आधार क्या है ? इस प्रकार प्रश्नोंका अन्त न होगा तब अन्तमें यही मानना पड़ेगा कि पिछली वस्तु अपनी ही शक्तिसे अथवा ईश्वरकी सत्तासे ठहरीहुई है । हम कहतेहैं कि वही कल्पना जो पीछे माननी पड़ती है सो पहले ही अर्थात् पृथिवीके साथ क्यों न मानलिई जावे कि पृथिवी अपनी ही शक्तिसे ठहरी है । जैसा कि सूर्यसिद्धांतमें लिखा है यथा–

श्लोक–मध्ये समन्ताद्ण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति ।
बिभ्राणःपरमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ॥ १ ॥

अर्थ–ब्रह्माण्डके बीच यह भूगोल आकाशमें ब्रह्मकी परम धारणात्मिका शक्तिसे ठहराहै ॥ १ ॥

इस भूगोलमें अपने आप ठहरनेकी शक्ति कैसी अद्भुत है । जैसे सूर्य और आगमें गर्मी, चन्द्रमामें ठंडापन, जलमें बहनेकी शक्ति, हीरेमें कठोरता और हवामें चंचलता आदि ॥

पढ़नेहारे यह सुनकर कह सकते हैं कि हां पृथिवीके इस अद्भुत शक्तिको "बाबावाक्यं प्रमाणम्" इस न्यायसे अधूरे मनसे हम मान सकते हैं पर पूरे मनसे नहीं। क्योंकि जब हम एक छोटीसे छोटी कंकरीको आकाशकी ओर फेंककर निराधार ठहरते नहीं देखते तब हमको कैसे इस विशाल भूगोलको जिसपर हिमालय विंध्य आदि अनेक बड़े बड़े पर्वत विराजमान हैं निराधार माननेमें संतोष होवे। पाठकोंकी यह शंका बहुत ठीकहै पर इस शंकाका समाधान दैवज्ञ चूडामणि श्रीभास्कराचार्य लिखते हैं ॥

श्लोक—आकृष्टिशक्तिश्च मही तयायत् खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या। आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क्वपतत्वियं खे ॥ १ ॥

अर्थ—पृथिवीमें आकर्षणशक्ति (खींचलेनेकी शक्ति) है सो उस पृथिवीसे अपनी शक्तिके द्वारा आकाशस्थ गुरु (भारी) पदार्थ अपनी ओर खींचलिया जाता है। इस हेतु वह पदार्थ गिरतासा जान पड़ता है परंतु यह पृथिवी जिसकी चारों ओर तुल्य आकाश विद्यमान है कहां गिरे? ॥ १॥

तात्पर्य यह है कि तुम जो कंकरी आदि पदार्थोंको पृथिवीकी ओर गिरते देखते हो सचमुच वे अपने आप नहीं गिरते किन्तु उन्हें यह पृथ्वी अपनी आकर्षणशक्तिसे वरवस अपनी ओर गिरालेती है। इस प्रकार उन पदार्थोंके गिरनेका कारण जैसा यह पृथिवी ठहरती है वैसा इस पृथिवीके गिरनेका कारण कोई नहीं है। जैसा गरीबोंको वेगार पकड़नेमें राजाकी शक्तिहै पर राजाको कौन वेगार पकड़े? इस प्रकार भास्कराचार्य शंका करनेहारोंको समझाकर अब आपही उनसे पूछते हैं कि यदि पृथिवी गिरे भी तो बतलाओ कहां गिरे तात्पर्य यह है कि जैसा तुम कहते हो कि पृथिवी हमारे नीचे की ओर जो दिशा है वहां गिरे वैसाही तुह्मारे नीचेके गोलार्द्धवासी *जैसा भारतवर्षकी अपेक्षा अमेरिकानिवासी मनुष्य कहेंगे कि पृथिवी हमारे नीचेकी दिशाकोगिरे।

* पृथ्वीपर जनस्थिति विषयक पाठ जो द्वितीय परिच्छेदमें है उसे पढ़कर समझो।

वह दिशा तो तुम्हारे मस्तकके ऊपरकी दिशा होगी । फिर अगल बगलवाले जो तुम्हारे स्थानसे परिधिकी चौथाईमें रहते हैं वैसाही कहेंगे तब बतलाओ ऐसी दशामें बेचारी पृथिवीका राजा त्रिशंकुकी भांति यथा-स्थित रहकर उस मनुष्यकी उपमा बनना ही क्या उचित न होगा? जिस पुरुषके दो स्त्रियां हों और उनमेंसे एक तो अटारीकी छतपरसे उसकी चोटीको पकड़े हो और दूसरीने सीढ़ीपर चढ़े जाते हुए देखकर उसकी टांग पकड़ लिई हो ॥

इस अवसरमें पाठकोंके तीन प्रश्न हो सकते हैं। १ आकर्षण शक्ति होनेका कारण क्या है ? २ उसके होनेमें प्रमाण क्या है ? ३ वह शक्ति के-वल पृथिवीहीमें है अथवा और और पदार्थोंमें भी"

इन प्रश्नोंमेंसे पहिले प्रश्नका उत्तर तो कोई नहीं देसकता, पर दूसरे और तीसरेका समाधान है। यथा आकर्षणशक्तिके होनेमें उसके द्वारा जो कार्य होते हैं वही प्रमाण ठहरतेहैं । यदि पृथिवीमें आकर्षणशक्ति न होती तो हरएक वस्तु जिसे हम जिस दिशाको फेंकदेते वह सदा उसी दिशाको चलीजाती कभी पृथिवीकी ओर न आती। जैसा हम पत्थरके टुकड़ेको यदि ऊपरकी ओर फेंकते तो वह ऊपरही ऊपरको चला जाता। क्योंकि उसकी गति रोकनेको कोई आड़ नहीं है पर ऐसा नहीं होता हम देखतेहैं कि वह वस्तु जिसे हम फेंकते हैं हमारे बलकी सीमापरिमित दूरीतक जाकर फिर पृथिवीकी ओर एकाएक गिरपड़ती है । इससे स्पष्टहै कि मानो उसे कोई खींच लेता है । खीचनेवाला कौन है ? वही पृथिवीमेंकी आकर्षणशक्ति ॥

तीसरे प्रश्नका उत्तर यह है कि पृथिवीहीमें क्या बरन हरएक भौतिक पदार्थमें उसकी छोटाई बड़ाईके अनुसार न्यूनाधिक यह शक्ति रहती है ॥

इन बातोंसे पृथिवीका निराधार होना निर्विवाद सिद्ध होगया । अब रहीं पुराणलिखित बातें जैसा शेषजीके सिरपर पृथिवीका स्थित रहना इत्यादि उनके ऐसा लिखेजानेका क्या तात्पर्य है ? तात्पर्य यही है कि पुराण जो लिखेगये हैं सो न केवल पढ़े लिखे अधिकारियोंके लिये लिखेगये

हैं वरन बाल वृद्ध नर नारी पंडित मूर्ख सबकी ईश्वरकी भक्ति करने तथा धर्म्मकी ओर लगानेके अभिप्रायसे लिखे गये हैं । अब तुम ही कहो कि, ऐसी जटिल बातें जो कि पृथिवीके निराधार प्रमाणित करनेके लिये ऊपर लिखी गई हैं सो क्या ऐसी सरल और सुबोध्य हैं ? कि उन्हें हरएक बिना पढ़ालिखा सहजसे समझ सकता है ? कदापि नहीं । तब तुम ही सोचो कि ऐसी दशामें व्यासजीने कैसी चतुराईसे लिखाहै कि वास्तवमें झूठ तो ठहरे नहीं और हरएक श्रोता जिसके मनमें कंकरी आदि फेंकी वस्तुको पृथिवीपर आती देखनेसे ऐसी भावना समाईहै कि निराधार पृथिवी नहीं रहसकती वह उलझनमें न पड़कर सीधे भक्तिमार्गपर बढ़ता जावे । भला हम तुमसे पूछते हैं कि शेष शब्दका अर्थ क्या है ? तुम यही कहोगे कि जो कुछ रह जाय । ठीक है फिर हम पूछते हैं कि महाप्रलयमें रह कौन जाता है ? इस प्रश्नका उत्तर यही होगा कि ब्रह्म । अब हम एक प्रश्न और करते हैं कि उपरोक्त अभिप्रायके समान यदि कोई कहे कि शेषके सिर पृथिवी स्थित है तो इस वाक्यका अर्थ क्या होगा ? यही न कि ब्रह्मके सिर पृथिवी है । भला अब देखना चाहिये कि जो कुछ व्यासजीने पुराणमें लिखा है सो ज्योतिषके सिद्धान्तसे मिलता है वा नहीं । ज्योतिषमें क्या लिखा है ? यही जैसा सूर्य सिद्धान्तका वचन पहिले लिखाजाचुका है

श्लोक–मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति ।
बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ॥ १ ॥

इसका अर्थ पहिले लिखाजाचुका है । क्या जाने अब तुम यह कहोगे कि एक बात मिलजानेसे कोई बात ठीक नहीं समझीजाती जब तक कि सब बातें न मिलजाँय। शेषशब्दका अर्थ तो तुमने ब्रह्म करादिया परंतु ब्रह्मके कहीं सिर भी है ? लेकिन शेषजीके तो हजार सिर लिखे हैं सो कैसे मिलेगा इसका उत्तरभी सुनलो "सर्वं खल्विदंब्रह्म" ऐसा श्रुति कहतीहै तो संसारमें जितने प्राणी हैं उनके जितने सिर हुए सो सब ब्रह्मके सिर समझे जाते हैं । अतएव पुरुषसूक्तमें ईश्वरकी स्तुतिमें ऐसा लिखा है यथा–

श्रुतिः-सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपाद् इत्यादि।

अर्थ-यह परम पुरुष हजार सिरवाला हजार आंखवाला हजार पाँववाला है। कदाचित् तुम कहोगे कि जब संसार भरके प्राणियोंके सिरकी संख्यासे ही ब्रह्मको सिरवाला कहनेका तात्पर्य है तो संसारमें तो प्राणी हजारसे कहीं अधिक हैं फिर हजार ही सिर क्यों लिखा ? इसका समाधान यह है कि यहां पर जो हजार शब्द आया है सो अनन्त अथवा बहुतके तात्पर्यसे आया है। इस बातकी साक्षी तुह्मारी यह पुरुषसूक्तकी श्रुति ही ठहरती है। क्योंकि यदि ऐसा न मानोगे तो श्रुतिके अर्थमें जो तुमने उस परम पुरुषको हजार सिरवाला, हजार आंखवाला, हजार पँाववाला. माना है उस अर्थसे तुह्मारा परम पुरुष काना लंगड़ा ठहरेगा। क्योंकि हर एक सिर पीछे दोदो आँख और पद धारियोंमेंसे कमसे कम दोदो पाँव होते हैं। अब तुम ही कहो कि क्या श्रुति उस परम पुरुषकी स्तुतिमें उसे काना और लंगड़ा बतलाती है ? नहीं नहीं यहां हजारसे हजारोंका तात्पर्य है। जब हजारोंका अर्थ सिद्ध होगया तो हजारों केवल हजारके लिये नहीं होसकता ॥ शायद तुम पूछोगे शेषजीका अर्थ ब्रह्म ही है तो फिर उन्हें सांपके रूपमें क्यों लिखा ? इसका उत्तर प्रथम तो यह है कि जब ब्रह्म सर्वव्यापी है तो चाहे जिसका रूपक बांधकर कहैं सब ठीक ही हो सकता है पर ऐसा नहीं है। उन्होंने जो और सबोंको छोड़कर सांपहीका रूपक बांधा है इसमें भी अवश्य गूढ़ाशय है। उस आशयको जैसा मेरी समझमें आता है प्रगट करताहूं ॥

इस ब्रह्माण्डरूपी कटाहमें जड़ चेतन पदार्थोंको डालकर रात्रिदिनरूपी ईंधन सूर्यरूपी आगसे जलाकर मास ऋतु रूपी कर्छीसे चला चलाकर काल पुरुष सबको पकातारहता है। तात्पर्य यह है कि इस संसारमें कोई भी वस्तु स्थिर नहीं जिसे आज हम देखते हैं कुछ काल पीछे वह नहीं रहना। इतिहास साक्षी है कि इसी भारतवर्षमें वशिष्ठ वलि विदेहसे तो ज्ञानी और हरिश्चन्द्र रन्तिदेव कर्णसे दानी, भीष्म द्रोण अर्जुनसे शूर, वेन कंस अव-

रंगजेबसे क्रूर, समय समयपर होगये पर आज तो वे नहीं हैं उनकी कथा मात्र अवशेष रहगई । किसीने संसारकी अनित्यता पर सच कहा है । यथा–

श्लोकः–यदुपतेः क गता मथुरा पुरी रघुपतेः क्वगतो- त्तरकोशला । इति विचिन्त्य कुरुष्व मनः स्थिरं जगदिदं न सदित्यवधारय ॥ १ ॥

अर्थ–इसका यही है । हे मित्र प्रभुता पानेपर मनको स्थिर रक्खो घमंडी होकर आंखके अंधे और कानके बहरे मत बनो । देखो यदुपति कृष्ण भगवान्की मथुरापुरी जो किसी समय यादवोंके अतुल प्रतापसे परिपूर्ण थी आज कहांगई ? वैसे ही रघुपति श्रीरामचन्द्रजीकी अयोध्यापुरी विभव विभूषित अथच रघुवंशियोंके असीम आतंकसे परिपूरित आज कहां गई ? निश्चय जानो कि यह जगत् असत् है । अस्तु इन बातोंका सारांश यह है कि जगत्की हरएक वस्तुके उदय अस्तका नियमितकाल रहता है । उस कराल कालका प्रवर्त्तक जो जगदीश्वर सो कालपुरुषके नामसे पुकारा जाता है । तब जैसे उस ब्रह्मकी सर्वव्यापकता अथ च अनंतताका रूपक आकाश, गंभीरताका रूपक समुद्र, प्रकाशकताका रूपक सूर्य, शीतलताका रूपक चन्द्रमा, स्थिरताका रूपक पर्वत, और रोमरोमराजित ब्रह्मांडका रूपक औदुम्बर (गूलर) वृक्ष इत्यादि उसीके सृजे हुए पदार्थ तत्तद्विषयमें करोडों गुणा न्यूनहोनेपर भी कवियोंसे ठहराये गये हैं वैसे ही " नियमितकाल पर वह प्रत्येक वस्तुका नाशक है " इस बातका रूपक सांप कहाजाना युक्तियुक्त होनेसे अति प्रशंसनीय है । तत्काल मृत्युकारक होनेहीं से सांप संसारमें काल कहलाता भी है । "सर्पराज शेषजीके सिरपर यह पृथ्वी स्थित है " ऐसा कहनेसे व्यासजीने न केवल ब्रह्मकी पूर्वोक्त विषयक अनुपम उपमा ही दिई है बरन कालपुरुषकी शक्तिके अधीन रहनेसे इस पृथिवीके नियमित समयपर (जो शास्त्रोंसे निर्णीत है कि ब्रह्माके दिनान्तकालमें अर्थात् हजार चतुर्युगोंमें लय होता है) नाश होनेकी सूचना देकर अपने श्रोताओंमेंसे प्रत्येकको संसारकी असारता दिखलातेहुए भगव-

क्तिकी ओर चित्तलगानेका सदुपदेश व्यंजित करके इस विनाशी संसारमें रहकर भी अविनाशित्व लाभ करनेका उत्तम मार्गभी दिखलाया है। इन बातोंको सुन समझकर हमारे पाठक कहेंगे कि भला हम मान लेते हैं कि शेष ब्रह्मका नाम है और सर्वव्यापक होनेसे सहस्त्रशीर्षा कहलाया उसके शिर पृथिवी रहनेका अर्थ है कि पृथिवी निराधार ब्रह्मकी शक्तिसे आकाशमें ठहरी है; परन्तु पुराणों में जो वाराह और कूर्मके आधार पर पृथिवीका रहना लिखाहै उसका क्या तात्पर्य है ? पाठक! जो तात्पर्य शेषजीके ऊपर लिखनेका है वही तात्पर्य उसका भी है। क्योंकि वाराह और कूर्म ईश्वरके अवतार होनेसे ईश्वरहीके नाम हैं। जैसा किसी मनुष्यका नाम होडाचक्रानुसार पंडितजीका रखाया हुआ मानिकलाल है पर उसका पिता प्यारसे छोटेलाल कहताहै और मा छंगनलाल कहकर पुकाराकरती है और ननसालके लोग उसे नन्हेलाल कहाकरते हैं। मानलोकि पृथक् पृथक् समय पर उसके गुण लिखनेहारोंने अपनी रुचिके अनुसार अथवा कारण वश उस मनुष्यका नाम कहीं तो मानिकलाल लिखदिया और कहीं छोटेलाल कहीं छंगनलाल और कहीं नन्हेलाल लिखदिया तो क्या इसरीति पर लिखित गुणावली उसी चतुर्नामधारी पुरुष हीकीन समझी जायगी ? अवश्य जो इस रहस्यसे अभिज्ञहैं एकही पुरुषकी समझेंगे। जिन लोगोंको इस रहस्यका ज्ञान न होगा वे भलेही " विभेदहै विभेदहै " ऐसाकह कहकर अपनी अज्ञानता प्रगटकरें ॥

इति धराधारनिरूपणोनाम तृतीयः परिच्छेदः।

अथ भूभ्रमनिरूपणो नाम चतुर्थःपरिच्छेदः।

पृथिवी विषयक विचार करते करते अब इसबातके विचारने का अवसर प्राप्त हुआ है कि यह पृथिवी चल है वा अचल ॥

इस समय बहुतसे लोग जिनको सरकारी पाठशालाओंमें शिक्षा मिलीहै यह मानतेहैं कि पृथिवी चल और सूर्य अचल है वरन यह बात यहांतक साधा-

रण होगईहै कि छोटे छोटे छोकरे तक जिन्हें अभी तीन ही दिन स्कूल में नाम लिखाये हुआ होगा इस विषयका प्रश्न करते ही चट बोल उठतेहैं कि पृथिवी चलतीहै सूर्य नहीं। इतना ही कहके वे संतोष नहीं करते वरन साधारण ज्योतिषियों को तो वे ठट्ठेमें भी उड़ाते हैं। कहतो देते हैं कि पृथिवी चलती है पर जब उनसे इसका प्रमाण पूछाजावे तो कहते हैं कि जैसा रेलपर चढ़कर जाते हुए मनुष्यको दृष्टि दोषसे पेड़ मन्दिर इत्यादि चलते हुए दीखतेहैं वैसा ही इस चलती हुई पृथिवीसे हमको सूर्य चलतासा दीखताहै जो वास्तवमें सच नहीं है परन्तु इस बातपर जब उनसे यह कहा जावे कि भाई ! टुक सो चो तो सही तुह्मारा कथन तो इस बातका दृष्टान्त ठहरताहै कि यदि पृथिवी चलती हुई मानी जावे तो ऐसी विपरीत भावना होसकती है पर पृथिवीके चलनेमें दृढ़ प्रमाण क्या है ? दृष्टांत प्रमाण नहीं ठहरसकता। इतना सुनते ही बालकों की तो गिनती क्याकि कुछ उत्तर देवें वरन बड़े बड़े एमए बीए भी मौनावलंबन करके आकाश की ओर ताकने और सिर खुजाने लगते हैं यदि उनमेंसे किसी किसीको इसका पूर्ण बोध होवे भी तो वे प्रसंग आने पर यह अवश्य ही कह तेहैं कि इस बातको कोपर्निकस वा गैलीलियो, अथवा सरऐज़िक न्यूटनने प्रगट कियाहै इसका मूल संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थोंमें नहीं है। हम उन लोगोंको यह दिखलाना चाहते हैं कि इसका मूल संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थोंमें विद्यमान है ॥

हमारे पाठकोंमें से जो इतिहासवेत्ता हैं उन्हें यह बात भली भांति विदित है कि हमारे प्राचीन सस्कृतके ग्रंथोंको खोजखोजके मुसल्मानोंने चालीस दिनतक अहोरात्र उन ग्रंथोंको जलाजलाके अपने नहानेका पानी हम्माममें गर्मकिया है। इस मुसल्मानी घोर अत्याचारसे हमारे कितने ही अनमोल ग्रंथरत्न सदाके लिये अलभ्य होगये। न जाने उन ग्रंथोंमें क्या क्या बातें लिखीथीं। उनकी याद करनेसे हमारा हिया टूकटूक होने लगता है। अस्तु जो कुछ बचे खुचे ग्रंथ रहगये हैं उन्हींकी शरण लेके अपने पाठकोंको यह बात दिखलाते हैं कि संस्कृतके प्राचीन ग्रंथोंमेंसे

किसी किसीमें पृथिवीका चलना लिखा है । जिन ग्रंथोंमें यह वात विशद रूपसे वर्णन किई गई है उन ग्रंथोंकी अलभ्यताके कारण हम इस वातका कि " उनमें ग्रहोंकी कक्षास्थितिका क्या क्रम माना है, तथा कैसी ग्रहों की गति आदि मानी है " पूरा पूरा वर्णन करनेमें असमर्थ हैं पर इतना तो अवश्य दिखलादेंगे कि उनमें पृथिवीका चल होना निःसन्देह है । इतना ही प्रमाणित करदेनेसे हमारे विज्ञ पाठक स्वयं विचारलेंगे कि जो लोग पृथिवीको चल मानतेथे वे अवश्य ही अपने मतकी पुष्टताके लिये जो प्रत्यक्ष दृश्यके विरुद्ध है कहां तक और कितने न युक्तियुक्त दृढ प्रमाण रखते रहे होंगे ॥

हे प्रिय पाठको देखो पृथिवीको चल माननेहारे आचार्योंका मत खंडन करते हुए श्रीपति आचार्य अपने ग्रन्थमें क्या लिखते हैं । यथा:—

श्लोक—नौस्थो विलोमगमनादचलं यथा न चामन्यते चलति नैवमिला भ्रमेण । लंका समापर गति प्रचलद्-भचक्रमाभाति सुस्थिरमपीति वदन्ति केचित् ॥ १ ॥

अर्थ—श्रीपति आचार्य कहते हैं कि कोई कोई आचार्य ऐसा कहतेहैं कि जैसा नौकापर चढाहुआ मनुष्य अचल वस्तुको अर्थात् वृक्षादिकोंको विपरीत दिशाकी ओर जाते हुए मानता है वैसे ही पृथिवीके घूमनेसे स्थिर भी नक्षत्रचक्र लंका देशसे पश्चिमकी ओर जातासा जान पड़ता है ॥

इतना कहकर श्रीपति आचार्य इस मतको खंडन करते हुए अपना सिद्धान्त लिखते हैं । न केवल ऐसा श्रीपति आचार्य ही ने लिखा है वरन लल्ल आदि और कई आचार्योंने भी इसी भांति उनके मतको खंडन करनेके अभिप्रायसे अपने अपने सिद्धान्तोंमें उनके मतका उल्लेख प्रथम किया फिर अपने सिद्धान्तको लिखा ॥

इन श्रीपति आदि आचार्योंका सिद्धान्त जो पृथिवीके चल माननेके खंडनमें लिखागया है उसे हम आगे पर चलकर दिखलावेंगे तथा उसका खंडन करके पृथिवीका चलना पूरी रीतिसे दृढ करदेंगे । यहांपर हमें केवल

इतना ही दिखाना है कि पृथिवीको चल माननेके विषयमें जो लोग ऐसा कहा-करते हैं कि इस विषयका उल्लेख प्राचीन संस्कृतग्रंथोंमें नहीं है इस विषयके आविष्कर्ता कोपर्निकस गैलीलियो तथा सर ऐज़िक न्यूटन ही हैं वे लोग देखलें कि संस्कृतमें इसका उल्लेख है वा नहीं और इस बातका भी विचार करें कि संस्कृतके ये ग्रन्थ किस समय लिखे गये तथा कोपार्निकस आदि-महानुभाव कब पैदाहुए ॥

कोपर्निकसका जन्म ईस्वी सन् १४७२ में हुआ । गैलीलियोका जन्म ईस्वीसन् १५६४ मे हुआ । न्यूटनका जन्म इस्वीसन् १६४२ में हुआ । इस समय ईस्वी सन् १९०४ वर्त्तमान है तो ४३२ वर्ष कोपर्निकसको पैदाहुए हुए तथा ३४० वर्ष गैलीलियोके जन्म होनेको हुए और सर ऐजिक न्यूटनको जन्मे २६२ वर्ष हुए। कोपर्निकसके पूर्व योरपमें कोई ज्योतिषी ज्योतिषी कहलानेके योग्य न था। अब हमारे यहांका हाल सुनिये यद्यपि हमारे यहां इतिहास शृंखलाबद्ध नहीं है कि जिससे हम ठीक ठीक यहांके आचार्योंका जन्मसमय तथा ग्रंथ निर्माण करनेका समय बतालासकें परन्तु जो कुछ ज्ञात होता है उसीको हम दिखलाते हैं ॥

पाठको ! हमारे पूज्यपाद पंडित शिरोमणि भास्कराचार्य जो लीलावती बीजगणित, ग्रहगणिताध्याय तथा गोलाध्याय इन चार भागोंमें *सिद्धान्तशिरोमणिनाम ग्रंथके रचयिता हैं जिनके ग्रंथ आजकल* सर्वथा पंडितोंको मान्य हैं अत एव पठन पाठन में सर्वत्र प्रचलित भी हैं उन भास्करोपम भास्कराचार्यका शाके १०३६ में *जन्म हुआ और उन्होने ३६ वर्षकी अवस्थामें सिद्धान्तशिरोमणि नाम* ग्रंथको रचा। जैसा कि वे आप ही शिरोमणि ग्रंथके अन्तमें लिखतेहैं ॥

श्लोक—रसगुणपूर्णमही १०३६ समशकनृपसमये ऽभवन्ममोत्पत्तिः । रसगुण ३६ वर्षेण मया सिद्धान्त शिरोमणीरचितः ॥ १ ॥

अर्थ–आचार्य लिखते हैं मेरी उत्पत्ति शाके १०३६ में हुई और छत्तीस वर्षकी अवस्थामें मैंने सिद्धान्तशिरोमणि नाम ग्रन्थ रचा ॥

आजसे चौवीसवेंदिन शाका १८२६ की प्रवृत्ति होगी। अब हिसाब लगानेसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि भास्कराचार्य को ७९० वर्ष हुए । जैसा आज कल सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ पठन पाठनमें प्रचालित है वैसाही भास्कराचार्यके समयमें लल्लसिद्धान्त ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त सूर्य सिद्धान्त श्रीपति आचार्यके ग्रन्थ प्रचालित थे। उन्हीं ग्रंन्थोंको पढ़कर भास्कराचार्यने पांडित्य लाभ कियाथा । उन ग्रन्थोंके बननेका समय भास्कराचार्यके समयसे अवश्य ही पूर्व मानना पड़ेगा । यदि बहुत पूर्व नभी माना जावे तो भी दौसौ वर्ष पूर्व मानना कुछ अनुचित न होगा । क्योंकि किसी नवीन ग्रंथको देशभर में सर्वमान्य तथा प्रचलित होनेके लिये उस जमानेमें जब कि छापा आदिका कुछभी प्रबंध नथा कुछ बहुत न होगा । अस्तु इन वातोंसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि एक हजार वर्षसे किसी प्रकार उन ग्रंन्थोंको बने हुए कम न हुए होंगे अधिक तो चाहे जितना हुआ हो । फिर इस बात पर भी ध्यान देना चाहिये कि लल्ल आचार्य तथा श्रीपति आचार्य अपने अपने ग्रंथोंमें पृथिवीको चल माननेहारे आचार्योंके मतका खण्डन करते हैं उन आचार्योंके ग्रंथ जिनका वे खंडन करते हैं किस समय बने तथा वे आचार्य कब हुए? इसका कोई पक्का प्रमाण नहीं है इस लिये हम भी थोथी बांतोंको भरकर ग्रन्थ बढ़ाना नहीं चाहते और हमारा प्रयोजन भी निकल गया । क्योंकि पृथिवीको चल माननेहारे आचार्य यदि लल्ल आदि आचार्योंके समकालीन ही मानलिये जावें तो-भी हजार वर्षसे कुछ अधिक ही वर्ष ठहरेंगे परंतु जब हम हजार वर्ष पहिलेका योरप इतिहास देखते हैं तो क्या पाते हैं कि योरपवासी जंगली असभ्य वृक्षोंकी छाल पत्तियोंसे लज्जा निवारण करनेहारे थे । इस वातको जानकर भी नवशिक्षित बाबूगण इस बातके कहनेका कि "पृथिवीका चल होना कोपर्निकस आदि विद्वानोंने निकाला है" कैसे साहस रखते हैं । इस लेखसे मेरा यह तात्पर्य नहीं कि मैं कोपर्निकस, गैलीलियो, और

सर ऐजिक न्यूटनको हलका ठहराऊं । नहीं नहीं वे बड़े गुरु और प्रतिभाशाली तथा तत्वान्वेषी थे पर योरपवालोंके गुरु थे न कि भारतवासी लोगोंके । पृथिवी चल मानने की बात इस भारतवर्षमें इस्तेमाल न होनेसे जो सनातन धर्म्मावलंबियोंकी बालविधवा कुलांगनाओंके कुचोंके समान उठकर जहांकी तहां ही दबगई थी सो कोपर्निकस आदि महानुभावोंही की कृपासे इस समय भारत वर्षमें कैसे धीरे धीरे उन्नति कर रही है जैसे नूतन समाजियोंकी बालविधवाओंके कुच पुनर्विवाह होजानेसे उन्नति करते हैं ॥

हे प्रिय पाठको ! पृथिवीके चल होनेकी बात संस्कृत प्राचीन ग्रंथोंमें है इसका दिग्दर्शन कराके अब हम उसको पुष्टकरनेकी चेष्टा करतेहैं । और इस आगेके लेखमे पृथिवीके अचल माननेहारोंके मतको तो हम प्राचीन मत कहेंगे और चल माननेहारोंके मतको नवीन वा नूतन मत कहेंगे । क्योंकि यह मत ईसाइयोंके परमगुरु मरियमपुत्र यीसुके समान मरकर और कबरमें तीन दिन दबा रहकर फिर जी उठा है ॥

जब कभी कोई प्राचीन मतका खंडन करके अपना सिद्धान्त स्थिर करना चाहता है तब उसे दो बातें करनी पड़ती हैं । प्रथम तो यह कि अपनी अटल शंकाओंसे वादीको निरुत्तर करना । दूसरी बात यह कि निज सिद्धान्तमे वादीकी शंकाओंका उचित समाधान करना । इन्हीं दोनों रीतियोंके आधार पर यहां भी लिखा जावेगा ॥

अब हम प्राचीन मतावलंबियोंसे यह पूछते हैं कि जब पृथिवीसे कहीं बड़े बृहस्पति शनैश्चर आदि ग्रहोंका चलना तुम स्वीकार करते हो तब पृथिवीके न चलनेमें क्या प्रमाण रखते हो ? इस प्रश्नका उत्तर कुछ नहीं; हां पृथिवीका चलना स्वीकार करनेमें उनकी कतिपय शंकाएं हैं । जैसा कि लल्ल आचार्य कहते हैं ॥

श्लोक—यदि च भ्रमति क्षमा तदा स्वकुलायं कथमाप्नुयुः खगाः। इषवोऽभिनभः समुज्झिता निपतन्तः स्युरपांप-

तेर्दिशि।१।पूर्वाभिमुखेभ्रमेभुवो वरुणाशाभिमुखो व्रजे द्घनः। अथ मन्दगमात् तथा भवेत् कथमेके न दिवा परिभ्रमः ॥ २ ॥

अर्थ-यदि पृथिवी घूमती है तो चिड़ियाएं अपने अपने घोंसलेको कैसे पावीं । फिर आकाशकी ओर फेंकेहुए वाण (जहांसे फेंके गये) पश्चिम गिरने चाहियें पृथिवीका घूमना पूर्व ओर है तो बद्दल पश्चिमकी ओर चलने चाहियें । यदि पृथिवीका गमन मन्द मानोगे तो साठ दंडका अहोरात्र कैसे । इसी प्रकार श्रीपतिने भी शंका किई है ॥

श्लोक-यद्येवमम्बरचरा विहगाः स्वनीडमासादयन्ति न खलु भ्रमणे धरित्र्याः।किंचाम्बुदा अपि न भूरिपयोमुचः स्युर्देशस्य पूर्वगमनेन चिराय हन्त ॥ १ ॥ भूगोलवेगजनितेन समीरणेन केत्वादयोऽप्यपर दिग्गतयः सदा स्युः। प्रासादभूधरशिरांस्यपि संपतन्ति तस्माद्भ्रमत्युडुगणस्त्वचला चलैव ॥ २ ॥

अर्थ-पृथिवीका घूमना माननेमें आकाशमें उड़ती हुई चिड़ियाओंको अपना घोंसला न मिलना चाहिये और जब कि देश पूर्व ओरको घूमताहै तो देर तक एक स्थानमें वृष्टि न होनी चाहिये । फिर भूगोलके वेगसे उत्पन्न जो वायु तिससे पताका आदि सदा पश्चिमही कि ओर उड़ने चाहियें और राजभवन तथा पहाड़ोंके शिखर गिरने चाहियें । (ये बातें जो नहीं होतीं) तिससे जाना जाता है कि तारागण घूमता है पृथिवी अचलही है ॥

ये शंकाएं प्राचीनोंकी हैं । इनका समाधान इस बातसे होजाता है कि यह पृथिवी अपने वेष्टन रूप वायुमंडलके सहित घूमती है ॥

यद्यपि एक यही तर्क कि जब बृहस्पति आदि बड़े ग्रह घूमतेहैं तो पृथिवी क्यों न घूमे प्राचीनमतके खण्डनमें बहुत है और यह वास्तवमें सच

भीहै तथापि संतोप जनक नहीं इससे हम दूसरी रीतिसे दिखातेहैं कि पृथिवी ही चलतीहै । यहां हम पाठकोंको सचेत करतेहैं कि इस लेखको ध्यानसे पढ़ें और चित्रोंपर भी ध्यानसे दृष्टि देवें ॥

प्रथम तो हम प्राचीन रीतिके समान ग्रहस्थितिके क्रमका उल्लेख करेंगे पीछे शंका करेंगे । प्राचीनोंके मतमें ग्रहोंकी स्थितिका क्रम इस प्रकार है । जैसा कि सिद्धान्तशिरोमणिके गोलाध्यायान्तर्गत भुवन कोशके दूसरे श्लोकमें श्रीभास्कराचार्य्यजी लिखते हैं ॥

श्लोक–भूमेः पिराडः शशांकज्ञकविरविकुजेज्यार्कि नक्षत्रकक्षावृत्तैर्वृत्तो वृतः सन् मृदानिलसलिलव्योम तेजोमयोऽयम् । नान्याधारः स्वशक्त्यैव वियति नियतं तिष्ठतीहास्य पृष्ठे निष्ठं विश्वंच शश्वत् सदनुज मनुजादित्यदैत्यं समन्तात् ॥

अर्थ–यह जो मृत्तिका पवन जल आकाश और तेजोमय अर्थात् पाञ्च भौतिक भूमिपिराड गोलाकारहै सो चन्द्र, बुध, शुक्र, सूर्य्य, मंगल, बृहस्पति, शनि, और नक्षत्रोंकी कक्षाके घेरेसे घिरा हुआ किसीके आधार पर नहीं किंतु अपनी ही शक्तिसे निश्चय आकाशमें ठहराहै और इसकी पीठ पर चारों ओर जगत् दानव मनुष्य देवता और दैत्योंके सहित ठहरा है ॥

इससे स्पष्टहै कि प्रथम चन्द्रकक्षाका घेरा फिर बुध फिर शुक्र आदि ग्रहोंकी कक्षाका घेरा है । और सबसे दूर नक्षत्र कक्षा है । इसका चित्र नम्बर दो २ वाला है निकालकर देखो ॥

हे प्रिये पाठको ! यही प्राचीन मतके अनुसार ग्रह कक्षा न्यास है । जैसा कि ऊपर वर्णित हुआहै । इस न्यासमें जो कक्षाओंमें चटकीले विन्दुहैं सो उन ग्रहोंके बोधक हैं जिनका नाम उनसे लगा हुआ लिखाहै । अब तुम देखते हो कि नक्षत्र मंडलको छोड़कर सबसे बड़ी कक्षा शनिकी है उससे छोटी गुरुकी, तिसरे छोटी मंगलकी फिर सूर्य्यकी फिर शुक्रकी फिर बुधकी और सबसे छोटी चन्द्रमाकी कक्षा है ॥

ग्रहोंकी गति यद्यपि एक प्रकारकी है तथापि उसके भेद मुख्य दो हैं अर्थात् एक योजनात्मिका गति दूसरी कलात्मिका गति ॥

योजनात्मिका गति कहनेका यह अभिप्रायहै कि ग्रह दिन दिन अपनी कक्षामें इतने योजन चलके कक्षाकी परिधि पूरी करता है ॥

कलात्मिका गति वह कहातीहै कि जो ग्रह चलकर अपनी कक्षाकी कला अर्थात् कक्षा परिधिका भाग प्रतिदिन पूरी करता है ॥

योजनात्मिका गति सबग्रहोंकी एकहै पर कलात्मिका गति सबकी भिन्न है।

कारण यह कि सबके कक्षावृत्त एकसे नहीं किन्तु छोटे बड़े हैं। सो कलात्मिका गति भिन्न भिन्न होनी ही चाहिये। जैसा कि सिद्धांत शिरोमणिके ग्रह गणिताध्यायान्तर्गत प्रत्यब्द शुद्धिके प्रकरण में २६-२७ वें श्लोकमें श्री भास्कराचार्य्यजी लिखते हैं ॥

श्लोकः-समागतिस्तु योजनैर्नभःसदां सदा भवेत्।कला दिकल्पनावशान्मृदुर्द्रुता च सा स्मृता॥२६॥कक्षाः सर्वा अपि दिविषदां चक्रलिप्ताङ्किितास्ताः वृत्तेलघ्व्यो लघुनिमहति स्युर्महत्यश्चलिप्ताः। तस्मादेते शशिजभृगुजादित्य भौमेज्यमन्दा मन्दाक्रान्ता इव शशधराद्भान्ति यान्तः क्रमेण ॥ २७ ॥

अर्थः-ग्रहोंकी योजनात्मिका गति सबकी सदा समान होती है। वही गति कला अंश आदिकी कल्पनासे मन्द और शीघ्र कही जाती है ॥२६॥

ग्रहोंकी सब कक्षा भचक्रकी कलासे अङ्कित अर्थात् चिन्हित हैं। वे कलाएं छोटे वृत्तमें छोटी छोटी और बड़े वृत्तमें बड़ी बड़ी हैं। इसीसे ये बुध, शुक्र, सूर्य्य, मंगल, गुरु, और शनि, चन्द्रकी अपेक्षा क्रमसे मन्दगामी से प्रतीत होते हैं ॥ २७ ॥

इससे अति स्पष्ट है कि सब ग्रह तुल्य चलते हैं पर जिसका कक्षा वृत्त छोटा है सो भचक्र को थोडे दिनमें पूरा करलेता है। इसीसे जिस भ-

चक्रको चन्द्र प्रायः उनतीस दिनमें पूरा करलेता है उसी भचक्रको पूरा करनेमें शनिको लगभग तीस वर्ष लगजाते हैं ॥

यहांतक तो हमने प्राचीन मतानुसार लिखा । अब हम उन प्राचीन मतावलंबियोंसे यह प्रश्न करतेहैं कि बुध और शुक्रके कक्षावृत्त सूर्य्यके कक्षा वृत्तकी अपेक्षा छोटे हैं तो उनको भचक्र पूराकरनेमें सूर्य्यकी अपेक्षा कम दिन भी लगने चाहियें और इसी कारण किसी न किसी दिन उनका और सूर्य्य का अन्तर छः राशितकका होजाना चाहिये । जैसा कि और ग्रहोंसे देखा जाता है । और जब कि छः राशिका अन्तर पड़े तब उनके अर्थात् बुध और शुक्रके ताराके उदय, और अस्तमें भी सूर्य्यके उदयास्त कालसे ठीक बारह घंटेका अन्तर पड़ना चाहिये अर्थात् जब सूर्य्य पश्चिम दिशामें अस्त होवे उसी समय पूर्वके क्षितिजपर उनका तारा उदय होताहुआ दिखाई पड़ना चाहिये । जैसा कि हरएक पूर्णिमाको चन्द्र दिखाई पड़ता है । सो ऐसा तो नहीं होता छः राशिका अन्तर तो दूर रहे कभी तीन राशिका भी अन्तर इन दोनों ग्रहोंसे सूर्य्यका नहीं देखा जाता कभी ऐसा नहीं होता कि ये दोनों तारा आधीराततक अथवा आकाशके मध्य भागमें दिखलाई पड़ें । इन्हीं कारणोंसे हम कह सकते हैं कि प्राचीन मतानुसार ग्रहस्थिति का क्रम भ्रांतिमूलक है और यही बात बुद्धिमानोंके लिये पृथिवीके सूर्य्यकी चारोंओर घूमनेमें दृढ़ प्रमाण है ॥

अब हम नवीन मतानुसार ग्रह स्थितिका क्रम दिखलाते हैं । जिससे पूर्वोक्त दोष सब मिट जातेहैं । मध्यमें स्थिर[1] सूर्य्य उससे परे बुध तिससे परे शुक्र फिर हमारी पृथिवी जिसकी परिक्रमा चंद्र देताहै पृथिवीसे परे मंगल उससे परे बृहस्पति यद्यपि मंगल और बृहस्पतिके बीचमें और ग्रह भी नवीन मत में देखे गयेहैं तथापि उनका उल्लेख हम यहां नहीं करते क्योंकि उनसे हमारी अभीष्ट सिद्धि नहीं । फिर बृहस्पतिसे परे शनि है नम्बर तीनका चित्र निकालकर देखो ॥

---

१ स्थिर कहनेका यह आशय नहीं कि सूर्य्य सर्वथा हिलताही नहीं किंतु यह है कि पृथिवीकी षड्ड और नहीं घूमता सचतो यहहै कि सूर्य्य अपनी कीलपर घूमता हुआ इन ग्रहोंको साथ लिये हुए अपने विशेष मार्गपर चलताहै जैसा राजा अपने सेवकोंसे घिराचले।

इस प्रकार ग्रहस्थितिका क्रम माननेसे पूर्वोक्त दोष कुछ नहीं आता। क्योंकि बुध और शुक्रकी कक्षा अपनी पृथिवीकी कक्षाके भीतरी पड़ती है इस हेतु जब बुध अथवा शुक्र सूर्य्यसे निकृष्टयोगमें होंगे तब उदित होंगे परंतु जब प्रकृष्टयोगमें होंगे तब अस्त रहेंगे। जब पूर्वीय निकृष्टयोगमें बुध अथवा शुक्र होंगे तब इनके तारा सूर्य्योदयसे पहिले पूर्वकी ओर दिखलाई देंगे। क्योंकि, पृथिवीके पूर्वी क्षितिजपर प्रथम इनका दर्शन होगा तिसके कुछ काल पीछे सूर्यका दर्शन होगा और जब बुध अथवा शुक्र पश्चिमीय निकृष्टयोगमें होंगे तब पश्चिमकी ओर इनके तारा सूर्य्यास्त पीछे दीखते रहेंगे कारण यह कि, पृथिवीके पश्चिमी क्षितिजपर प्रथम सूर्य्य छिपेगा फिर थोड़े समय पीछे तारा छिपेगा। यह बात चार ४ नंबरके चित्र देखनेसे स्पष्ट विदित होजावेगी तथा नम्बर ५ का चित्र देखनेसे ताराका अस्त रहना विदित होताहै क्योंकि, पूर्वीक्षितिजपर प्रथम सूर्य उदित होता है पीछे तारा. सो सूर्यके तेजके कारण तारा दीख नहीं सकता ऐसेही पश्चिमी क्षितिजपर सूर्य छिपनेसे पहिले ही तारा छिपजाता है।

इस प्रमाणसे पृथिवीकी वर्षौड़ी गति सिद्ध होचुकी जब पृथिवीकी वर्षौडी गति प्रमाणित होचुकी तब पृथिवीकी दैनिक गतिके विषय प्रमाण लानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि रात और दिन होनेसे ही यह बात सिद्ध होती है कि साठ दण्डमें पृथिवी एकबार अपनी कीलपर घूम जाती है। तथापि यहां पर हम एक ऐसी घटनाका उल्लेख करते हैं जिससे प्रत्यक्ष जाना जाता है कि, पृथिवी प्रतिक्षण घूमती रहती है इसे जो चाहे सो करके देखभी सकता है॥

घटना ऐसीहै कि, फ्रांस देशके पेरिस नगरमें फूकोल्थनामके ज्योतिषीने ईस्वी सन् १८५१ में एक गुंबजकी छतसे एक लोहेका गोला जिसका व्यास एक फुटका था दोसौ फुटसे कुछ अधिक नरम तारसे बांधकर लटकाया और उस

---

१ निकृष्टयोग तब कहा जाताहै जब कि सूर्य्य और पृथिवीके बीचमें ग्रह आजाताहै।
२ प्रकृष्टयोग वह कहाता है जब ग्रह और पृथिवीके बीच सूर्य्य होताहै।

गोलेमें भूमिको अपनी नोकके अग्रभागसे स्पर्श करती हुई एक सुई लगा दिई । फिर भूमितलपर बारह फुटके व्यासका एक घेरा बनाया और उस पर कुछकुछ वालू बिछादिई। फिर गोलेके तारको सुतलीके एक सिरेसे बांध-कर एक ओर की भीतकी खूँटीसे उस सुतलीका दूसरा सिरा खेंचकर बांध दिया । इस प्रकार सब संपन्न करके पीछे एक दिया सलाई जलाकर उससे सुतलीका वह सिरा जो तारसे बंधाथा जलादिया।तब गोला छूटते ही इधरसे उधर हिलने लगा जैसा कि किसी बड़ी घड़ीमें लम्ब इधरसे उधर आता जाता दिखाई पड़ता है । उसी भाँति यह गोलाभी चलने लगा।तब क्या हुआकि, उसकी जो सुईथी सो जहांसे जहाँतक भूमितलको स्पर्श करतीथी वहांसे वहांतक: उस रेतीमें रेखा बनाने लगी । उन रेखाओंमेंसे प्रत्येक रेखा एक ओरको हटती गई । सो जब तक वह गोला आपसे आप स्थिर न हुआ तब तक बराबर रेखाएं पड़तीही गई । वे सब केन्द्र बिन्दुमें तो मिलीथीं पर उससे आगे क्रमशः एक दूसरेसे हटी हुई थीं। देखो चित्र नंबर ६ का निकालकर ॥

हे प्रियपाठको ! विचारनेका स्थल है कि, यदि पृथिवी प्रतिक्षण चल ती न होती तो रेखाएं कदापि टेढी होकर एक दूसरेसे भिन्न न होती बरन् एकही रेखापर गोलेकी सूई चलती रहती ॥

इन अचल प्रमाणों द्वारा पृथिवीका चल होना अचल होजानेसे पाठकों का मन पुराणोंकी ओरसे चलायमान होकर हमसे यह पूछनेको चंचल हो रहा होगा कि, इस भाँति पृथिवीके चल होनेपर भी पुराणवालोंने पृथिवीको अचल और सूर्य्यको चल जो लिखा है उस लिखनेका अभिप्राय तुम व्यवहार दृष्टिसे कहोहोंगे इसलिये हमभी तुमसे वह न पूछकर यह पूछते हैं कि, पुरा-णवाले व्यवहारदृष्टिका आश्रय लेकर पृथिवीको अचल और सूर्यको चल तो लिख सकते हैं पर सूर्यके घूमनेकी रीति इस प्रकार लिखनी थी कि, उदय कालमें पूर्व, मध्यान्हकालमें देखनेवालेके मस्तकपर और अस्तकालमें पश्चिम तथा आधीरातको मध्यान्हकी दिशासे विपरीत दिशामें, अर्थात् उन्हें इस अभिप्रायको सर्व साधारणोंके समझानेके लिये गाड़ीकी खड़ी पहियाका

दृष्टान्त देना बहुत उचित था। जिस पहियाका वीचवाला गड़ारा जिसमें अक्ष वा आखाका सिरा घुसता है वह पृथिवीका दृष्टान्त ठहरता और खड़ी पहियाकी गोलाईकी परिधि अर्थात् नेमि जहां हालबंधी रहती है सूर्यके घूमनेका मार्ग समझीजाती पर उन्होने ऐसा न लिखकर वरन् ऐसा लिखा है कि, उदयकालमें पूर्व, मध्यान्हमें दक्षिण, अस्तके समय पश्चिम, और आधीरातको उत्तर सूर्य घूमता है और इस अभिप्रायके प्रगट करनेके लिये उन्होंने तेलीके कोल्हूका दृष्टान्त भी दिया है।तब वतलाओ कि, तुम्हारे पुराणवालोंकी यह अघटित वात किस दृष्टिसे घटित हो सकेगी। यदि उनकी यह वात घटित न होसकी तो तुम्हारे पुराणवाले गप्पी ठहरे पै ठहरे ॥

हमारे पाठकोंकी यह शंका अवश्यही अतिवंका है पर पुराण लिखने वाले महर्षि वेदव्यासजीका जो डंका ज्ञानियोंके वीच वजगया सो क्या ऐसी छोटी छोटी वातोंमें भूल करनेसे वजसकता था कदापि नहीं। हम पहलेही कहचुके हैं कि, हमारे हजार सिर पटकने परभी यदि उनकी कोई वात हमारी समझमें न आवे तौभी हम उनको झूठा नहीं कहसकते। उन्होंने जो कुछ लिखाहै सो बहुत सोचसमझके लिखा है। यदि उन वातोंको तुम अपनी झूठी भावनासे झूठ समझो तो तुम झूठे हो न कि वे। इस विषयमें हम एक भ्रमात्मक दृष्टान्त देतेहैं पहिले उसे समजो पीछे इसेभी समझना। मानलोकि तुह्मारे पास कोई आदमी वैठाहै।अब हम उसको वैठाल रखनेके अभिप्रायसे तुह्मारेपास कहींसे ऐसा लिख भेजते हैं कि "उसे रोको मत जानेदो" परन्तु जब तुह्मारेपास हमारा लिखाहुआ पहुँचा तब तुमने उसे पढ़कर यह समझा कि इसमें यह लिखाहै कि उसे रोको मत, बल्कि जानेदो ऐसा समझकर तुमने उसे जानेदिया। अब हम पूछते हैं कि हमने जिस तात्पर्यसे ऐसा लिखाथा उस तात्पर्यके प्रगट करनेके लिये हमारा वह लिखना भूलका था क्या? तुम कभी हमारी भूल नहीं कहसकते वरन यह कहोगे कि हमारे समझनेमें भूल हुई। इसी प्रकार हे प्रिय पाठको व्यासजीके लिखनेमें कुछ भी भूल नहीं है किन्तु तुम्हारी समझहीमें भूलहै। अब उसेभी समझलो ॥

यदि व्यासजी तुह्मारेही कहनेके समान लिखते तो मेरुदेशवासी: नरनारी जिनकी स्थिति तुह्मारी स्थितिकी अपेक्षा ठीक वेंडीहै उनसे वैसेही अप्रसन्न होते और उन्हें झूठा कहते जैसा कि अभी तुम अप्रसन्न हो और झूठा कहते हो। क्योंकि उनकी स्थितिके अनुरूप देखनेसे तो सूर्यका घूमना ठीक तेलीके कोल्हूके वैलके समान है । फिर यदि उनकी स्थितिके समान

---

१ इसे समझनेके लिये धराकार निरूपण परिच्छेदमें जहांपर धरातलके ऊपर जनस्थितिका विषय लिखा है निकालकर ध्यानपूर्वक पढ़ो और समझो ॥

२ इस बातके समझनेके लिये बालकोंको चाहिये कि अपने हाथमें एक गेंद वा नारंगी लेवें । फिर उसके ठीक बीचो बीचमें एक धागा बांध देवें । तत्पश्चात् दो सूई वा अल्पीन लेकर उनमेंसे एककोतो उसी धागेसे लगेहुए स्थानमें कहीं चुभोदेवें और दूसरीको उस गोलवस्तुके एक सिरे ऐसे स्थानपर चुभोदेवें कि वह डोरेके पासवाली सूईकी अपेक्षा देखनेमें ठीक बेंड़ी जान पड़े । इतना करके उस गोलेको इस प्रकार हाथमें लेवें कि डोरेके पासवाली सूईका सिरा आकाशकी ओर होजावे । फिर गोलेपर तो पृथिवीकी और डोरेपर विषुव रेखाकी जो पृथिवीके उत्तरीय गोलार्ध तथा दक्षिणीय गोलार्धको अलगाती है भावना करें तथा डोरेके निकट लगी हुई सुई को पृथिवीपर स्थित अपना शरीर मानलेवें । तदनन्तर वे एक बत्ती या दियासलाई जलाकर और उसे सूर्य समझकर उस गोलेमें बंधेहुए धागेके ऊपर ऊपर और कुछ दूर दूर धीरे धीरे घुमाते जावें । तब देखेंगे कि वह बत्तीका ज्योतिपुंज उस सूईके ऊपर होकर चला जावेगा जिस सूईपर उन्होंने अपने शरीरकी भावना किई है । यह दृश्यतो हुआ विषुवरेखाके आस पास रहनेहारे लोगोंका जो गाड़ीकी खड़ी पहियाका दृष्टांत ठहर सकता है ॥

फिर बालक उस गोलेको अपने हाथमें इस रीतिसे लेवें कि गोलेके सिरेपर लगी हुई सुईका सिरा आकाशकी ओर हो जावे और डोरेके पासवाली सुई उसकी अपेक्षा बेंड़ी देख पड़े । इतना करके बत्तीकी ज्योतिको जिसे सूर्य मान रक्खा है उसी भांति डोरेके ऊपर ऊपर और दूर दूर घुमावें जैसा कि पहिले बतला चुके हैं । तब क्या देखेंगे कि गोलेके सिरेपर लगी हुई सुईसे जो मेरु देशवासी नरनारियोंका दृष्टान्त रूप है यह ज्योतिपुंज तेलीके कोल्हूका बैलसा घूमता हुआ देख जावेगा । यह दृश्य मेरुस्थानस्थित जन्तुओंका है । जिसे भगवान् वेदव्यासजीने अपने पुराणोंमें लिखा है ॥

लिखाजाता है तो तुम अप्रसन्न होतेहो। क्योंकि तुझे वैसा दीखता नहीं और यह बात लिखनी किसी न किसी रूपमें अवश्य है तो अब व्यासजी बेचारे करें तो क्या करें। व्यासजीको बड़ा संकट उपस्थित हुआ होगा। क्योंकि दोनों देशके निवासी उनकी दृष्टिमें तुल्य दयाके पात्र हैं किसको तो प्रसन्न करें और किसको अप्रसन्न। निदान उन्होंने लाचार होकर न्याय दृष्टिका आश्रयलिया होगा। न्याय क्या है? यही कि " सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम् " अर्थ-सब अंगोंमें शिर प्रधान है तो पृथिवीका शिर क्या है? वही मेरु। यह बात हम पहिले भी लिखचुके हैं कि उत्तरकी दिशा ऊपर और दक्षिण दिशा नीचे समझी जाती है। तुम नक्शेमें यही रीति अबतक देखतेहो। इसी न्यायदृष्टिसे व्यासजीने सूर्यका घूमना मेरु-देशवासियोंकी स्थितिकी दृष्टिसे लिखना उचित समझा। जिसका दृष्टान्त तेलीका कोल्हू बहुत उत्तम है॥

अब हम तुमसे पूछते हैं कि कचहरीमें जज्जलोग न्याय करके किसी असामीको जिताते हैं और किसीको हराते हैं। तुम उन जज्जोंको तो गालियां नहीं देते उन्हें झूठा नहीं बनाते। फिर व्यासजीपर इतनी नाराज़गी क्यों? यह नाराज़गी ईश्वरपर दिखलानी चाहिये जिसने तुझें ऐसे देशमें उत्पन्न किया जहांसे सूर्यका घूमना व्यासजीके लिखे मुताबिक साबित नहीं होता। अथवा यह नाराजगी अपनी मातापर प्रगट करनी चाहिये जिसने तुमसमान बुद्धिसागर पुत्ररत्नको बिनसोचे समझे ऐसे देशमें जनदिया जहांसे सूर्यका घूमना व्यासजीके लिखे मुताबिक साबित नहीं होता? सचमुच यदि तुम अपनी मातापर नाराज़ होओ तो हमभी उससे कहीं तुझारी अपेक्षा अधिक नाराज़ हैं। क्योंकि उसने तुम ऐसे सपूतपूतको इस देशमें जनदिया। जहांसे सूर्यका घूमना व्यास-जीके लिखे मुताबिक साबित नहीं होता। उसको उचित था कि प्रसवकी पीर उठतेही मेरुकी ओर भागजाती जहांने तुमको सूर्यका घूमना व्यास-जीके लिखे मुताबिक साबित होता। इति दिक्॥

इति गौडतत्त्वप्रकाशिकायां भूभ्रमनिरूपणो नाम चतुर्थः परिच्छेदः समाप्तः।

श्रीः।

अथाहोरात्रनिरूपणो नाम पंचमःपरिच्छेदः।

इस प्रकार हम अपने पाठकोंको पृथ्वीका आकार और आधार तथा चल होना समझाकर अब इसके चल होनेसे जो इसपर अद्भुत अद्भुत कार्य होतेहैं उनमेंसे प्रथम अहोरात्रमान अर्थात् दिन और रातका मान जो भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न २ होताहै उसे समझातेहैं ॥

हे प्रिय पाठको ! जब तुम अपनी जीवनयात्रामें वैशाख, ज्येष्ठ, और आषाढ़मासको पातेहो और उन महीनोंके दिनोंको वृद्धि शौर्यसम्पन्न राजाके राज्यकी सीमाके समान क्रमशः बढ़ते देखतेहो तथा कार्त्तिक, अगहन, और पूसमहीनोंके दिनोंको कपूतकी सम्पतिसमान दिन दिन घटते देखतेहो तबक्या तुह्मारे मनमें यह प्रश्न न उठता होगा कि दिनमानके इसप्रकार घटने बढ़नेका कारण क्याहै अवश्यही यह प्रश्न उठता होगा और इस प्रश्नके उत्तर पानेके लिये तुमने पंडितोंसे पूछाभी होगापर क्या ज्याने तुमको अबतक संतोषजनक उत्तर मिला था नहीं। यदि न मिलाहो तो तुम इस परिच्छेदको ध्यान पूर्वक पढ़कर ठीकठीक समझलो कि दिनमानके इस भांति घटने बढ़नेका कारण क्या है ॥

हे भाइयो! दिनमानके बढ़ने घटनेका कारण और कुछ नहीं केवल तुम्हारी इस पृथिवीका चलना हीहै । जिसके विषय तुम पिछले परिच्छेदमें पढ़चुके हो । देखो यदिकोई तुमसे पूछे कि, दिन क्या वस्तुहै तथा रात्रि क्या वस्तुहै तो तुम यही कहोगे कि सूर्यका दर्शन होना तो दिनहै और उसका दर्शन न होनाही रात्रिहै । जैसा कि भास्कराचार्य कहतेहैं—

श्लोक—दिनंदिनेशस्य यतोऽत्र दर्शने
तमी तमोहन्तुरदर्शने सति ॥

अर्थ—जितने समय तक सूर्यका दर्शन होता रहे, उतना समय तो दिन और उसके अदर्शन कालको रात्रि कहते हैं ॥

तुम्हारी यह बात कि सूर्यदर्शनकाल दिन तथा अदर्शनकाल रात कहलाती है हम भी मानते हैं और इसी मूल बातके आधारपर दिनका

वृद्धिक्षय तुमको समझाते हैं। तुमको यह बात भली भांत ज्ञात हो चुकी है कि पृथिवीका आकार नारंगी वा गेंदसा गोल है। अब तुम एक गेंद अपने हाथमें लेओ और उसे मानलो कि यह पृथिवी है। फिर उसके ठीक बीचोबीच एक डोरा बांधदो जिससे उस गेंदके दो भाग होजावें अर्थात् उत्तरीय गोलार्ध और दक्षिणीय गोलार्ध। इस डोरेको तुम पृथिवीकी विषुव रेखा समझो जिससे पृथिवी दो भागोंमें बंट जाती है। अब तुम उस गेंदके एक भागपर अपना ध्यान देओ और यह सोचो कि इस भागके हमें समानान्तर समान समान नब्बे हिस्से करने हैं। तब तुम उन नब्बे हिस्सों मेंसे हर एकके स्थानपर चाहो तो डोरे बाँधते जाओ चाहो उन स्थानोंको मनही मन समझे रहो। यदि तुम डोरा बाँधते जाओ तो देखोगे कि प्रत्येक हिस्सेमें डोरा कमलगताहै अर्थात् जितना डोरा ठीक बीचोबीचके बांधनेमें लगाहै उससे कुछ कम उसके आगेके स्थानमें लगताहै। फिर उससे आगेके स्थानमें उसकी अपेक्षा और कम लगताहै। निदान नब्बेवें हिस्सेके अन्तमें कुछ भी डोरा न लगेगा। इस बातसे तुम्हें ज्ञात होगया कि पृथिवीकी सबसे अधिक परिधि उसके ठीक बीचोबीचमें है और क्रमक्रमसे वह परिधि घटती जाती है। यहांतक कि अन्तमें वह परिधि एक केन्द्र बिन्दुमें लीन होजातीहै। फिर यही दशा पृथिवीके दूसरे गोलार्धकी होगी। इन्हीं नब्बे हिस्सोंको संस्कृतमें अक्षांश कहते हैं। भारत वर्षसे दक्षिण जो लंका है सो पृथिवीकी विषुवरेखापर स्थितहै अर्थात् वह पृथिवीके ठीक बीचोबीचपरहै। वहांसे उत्तरकी ओर मेरुस्थानतक उत्तरीय अक्षांश कहेजातेहैं तथा दक्षिणकी ओरके दाक्षिणीय अक्षांश कहलाते हैं परन्तु वह आप निरक्ष देशमें स्थित है (१) अब तुम उत्तरीय अक्षांशोंमेंसे किसी

---

(१) अंगरेज लोग नक्शेमें जो लंका टापूका चित्र देते हैं सो उत्तरीय अक्षांशोंमेंसे छः और दस अक्षांशोंके बीचमें देते हैं पर हमारे यहांके आचार्य उसे निरक्षस्थानमें मानते हैं। इससे ज्ञात होता है कि जिस टापूको अंगरेज लंका आजकल कहते हैं। सचमुच वह हमारे शास्त्रोंमें कही हुई लंका नहीं है। ऐसा अनुमान होता है कि वह स्थान जिसको हमारे यहां लंका कह कर वर्णन किया गया है सो समुद्रमें डूब गया ॥

हमारे इस अनुमानमें दो दृढ़ प्रमाण हैं। प्रथम तो यह कि हमारे यहांके हरेक ज्योतिषके सिद्धान्तग्रन्थोंमें लंकाको निरक्ष स्थानमें माना है। यदि कहो कि क्या जाने उनसे भूल होगई हो तो हम कहते हैं कि यदि उनकी भूल होती तो यह भूल ऐसी नहीं थी जो गुप्त रह सकती। क्योंकि "निरक्षमें दिनमान सदैव तीस दंडका होता है" यहबात तो हरेक देशके हरेक गोलाभिज्ञ ज्योतिषी निर्भ्रांत मानते हैं वैसाही हमारे आचार्योंने भी माना है। तथा उत्तर दक्षिणमें बढ़ता घटता रहता है। भला तो यह भूल ऐसी थी कि दश अक्षांश पर जो कुछ दिनमानकी घटती बढ़ती हो सकती है सो सदैव अर्थात् प्रतिदिन सूर्योदय और सूर्यास्तके समय देखी जाती। फिर ध्रुव तारा जो निरक्ष स्थानमें सदा उत्तरीय क्षितिजपर देखा जाता है सो इस अंगरेजोंकी मानीहुई लंकासे क्षितिजके दश अंश ऊपर दिखाई पड़ता है। यदि हमारे शास्त्रोंमें कहीहुई लंका सचमुच यही होती तो ये दो बातें अर्थात् एक तो प्रतिदिन सूर्योदय और सूर्यास्तके समयमें फरक पड़नेकी बात तथा दूसरी दिन दिन ध्रुव ताराके दश अंश क्षितिजसे ऊंचे दीखनेकी बात हमारे सूक्ष्मदर्शी सिद्धान्तवेत्ताओंको लंकाको निरक्षस्थानमें माननेसे अवश्यही रोकती। यदि एक भूलभी जाता; तो सब ही आचार्य जो भिन्न भिन्न समयमें हुए हैं न भूल जाते कोई न कोई अवश्यही इस स्थूल भूलको जो प्रतिदिन देखनेमें आनेकी थी पकड़ता पर हमारे यहांके सभीसिद्धान्तवेत्ता एकही स्वरसे लंकाको निरक्षस्थानमें माननेकी बात अपने अपने ग्रंथोंमें लिखी है। यह साक्षी तो हुई ज्योतिषके आचार्योंकी ॥

अब दूसरी साक्षी इससेभी बढ़कर भगवान् वाल्मीकिजीकी है। उनकी साक्षी ऐसी पक्की है कि हमारे ज्योतिषके आचार्योंको बिलकुल सच्चा ठहराती है देखो वाल्मीकिजीने हनुमानजीके समुद्रलंघनके समय समुद्रको सौ योजन अर्थात् चारसौ कोस लिखा है; परंतु यह लंका जिसे अंग्रेज लोग नकशेमें देते हैं सो तो सेतुबंधरामेश्वरसे अनुमान साठही मीलहै जिसके तीसकोस होतेहैं। भला तीसकोसको चारसौ कोस उन्होंने कैसे लिखा कदाचित् तुम कहोगे कि अतिशयोक्तिसे लिखाहै जैसा प्रायः कवि ऐसा लिखा करतेहैं। इसपर हम कहतेहैं कि भला यहांपर तो तुम अतिशयोक्ति मानलेगे पर जहांपर उन्होंने पुल बांधनेके विषय ऐसा लिखाहै कि पहिले दिन १४ योजन, दूसरे दिन २० योजन, तीसरे दिन २१ योजन, चौथे दिन २२ योजन, पांचवें दिन २३ योजन पुल तैयार हुआ सबकी टीक देनेसे पूरे सौ योजन होतेहैं वहां क्या कहोगे ? क्या ऐसे लेख को तुम अतिशयोक्ति कह सकते हो। यह लेख तो तवारीखका सा है। तुम चाहो तो, वाल्मीकीयरामायणके युद्धकाण्डमें बाईसवें सर्गके चौसठवें श्लोकसे अड़सठवें श्लोकतक

निकालकर देखलो । फिर इसकी सत्यतामें बडी भारी बात तो यह है कि वाल्मीकिजीने रामायणको बनाकर लवकुशको पढ़ाकर श्रीरामचन्द्रजीको अश्वमेधके समय सुनवाया था । जिस सभामें बड़े बड़े वसिष्ठ आदि त्रिकालदर्शी मुनि तथा पंडित, कवि, देश देशके नरेश सभी बुद्धिमान् हाजिर थे प्रथम तो श्री रामचन्द्रजी ही तीस कोसके पुलको चारसौ कोशका पुल सुनकर ग्रंथको समुद्रमें डुबवादेनेकी आज्ञा दे देते । क्योंकि क्या हो सकता है कि रामचंद्रजीसरीखे धर्म्मपालक मर्यादापुरुषोत्तम इतने बड़े असत्यको सहलें कदापि नहीं क्या जाने तुम कहोगे कि रामचन्द्रजीने उसमें अपने यशका गौरव समझकर नहीं डुबवाया तो हम कहते हैं कि तुम्हारा यह कहना ठीक नहीं है । क्यों कि यदि रामचन्द्रजीमें यह आत्मश्लाघाका गुण होता तो आज युगान्तरमें भी जो लोग सोते जागते उठते, बैठते, चलते, फिरते, दुःखमें सुखमें कहांतक कहे सभी अवस्थामें उनके परम पुनीत नाम रामरामका उच्चारण करते हैं सो क्या कभी उनका नाम इस प्रकार संसारमें छोटे,बड़े, नर,नारी राजा, रंक,सभीसे लिया जाता?क्या कभी किसीका यश जो अपने झूठे यशको चाहता है संसारमें हुआ है इसको भी रहनेदो । भला दूसरे वसिष्ठ आदि महर्षि तथा अपर पंडितमंडली जो सभामें विराजमानथी वाल्मीकिकी इस धृष्टताको कैसे सहन करती ? क्या वे लोग आजकलकेसे पंडित थे जो रुपये दोरुपयेकी लालचमें पड़कर स्वार्थाधप्रकाशिकासी नीच पुस्तकपर हस्ताक्षर करदेते हैं । छिः छिः ऐसी बात सोचना उन महानुभावोंके विषय अपने लिये नरकका मानो द्वार खोलना है अस्तु यह तो कहो कि वे लोग रामचन्द्रजीकेइस झूठे यशको कैसे सह सकते जो सीता ऐसी सती स्त्रीका अग्निद्वारा परीक्षा होजानेपरभी रावणके गृहवास होनेहीसे अपने राजा रामके यहां रहना मर्यादाभंग होती देख न सहसके और अन्तमें जगज्जननी जानकीको जन्मभरके लिये जंगलमें वास करनाही पड़ा,ये सब बातें हमारे पाठकोंको भली भांति विदित हैं । वाल्मीकिजीके लिये तीस कोसके पुलको चारसौ कोसका लिखदेना तो सहज था पर उसका सर्वसाधारणोंमें मान्य होना उतनाही कठीन था जितना कि मधुसूदन संहिताके आचार्यको आज कल अपना अवतार होना साधारणोंमें सिद्ध कर देना कठिन है । इन कठिनाइयोंको जान बूझकर भी यदि कोई अधर्म्मी हठधर्मीसे कहे कि ये सब बातें झूठी हैं तो हम कहते हैं कि उस कुशाग्रबुद्धिको किसी दिन अपने बापसे ऐसा कहना कि "तू मेरे बाप होनेमें पक्का प्रमाण क्या रखता है" कुछ अघटित न होगा । क्योंकि सच मुच बापके पास कोई ऐसा साक्षी न होगा जो उसे गर्भस्थापन करते देखतारहा हो । यदि उसके बापको उदास निराश देखकर

अक्षांशमें अपने रहनेके स्थानकी कल्पना करके उस स्थानपर एक चिन्ह कर दो चाहे सुई गाड़दो। फिर एक चिन्ह विषुवरेखापर लंकास्थानका करदो और उसी लंकासे उत्तरकी ओर परिधिकी चौथाईपर मेरुका चिन्ह करदो। इतना करके एक दीपक जलाके रक्खो और उसे सूर्य मानलो। फिर उस गोलेको प्रथम दीपकके सामने ऐसा रक्खो कि गोलेकी बीचोबीचवाली परिधि और दीपकके ज्योतिपुंजका ठीक आम्ना साम्ना रहे। इतना करके पास एक घड़ी रखलो। तब उस गोलेको एक बार घुमादो। उस घुमानेमें तुम देखोगे कि जो स्थान पहिले उजेलेमें थे सो धीरे धीरे अंधेरेकी ओर जाते हुए अन्तमें उसी अंधेरेमें जाकर लीन होजातेहैं तथा अंधेरेके स्थान उजेलेकी ओर चलकर अन्तमें प्रकाशमान होजातेहैं। यह दृश्य गोलेके एक बार घूमनेसे हुआ कि अंधेरेके उजेले और उजेलेके अंधेरे होगये इन्हीं दो भागोंमेंसे उजेलेको दिन और अंधेरेको रात कहते हैं। फिर तुम इस बातपर भी ध्यान देओ कि विषुव रेखाके सामने सूर्यके रहते गोलेमें जो हमारा स्थान अंधेरेमें था उसे उजेलेमें आकर फिर अंधकारको पहुंचनेमें कितना समय लगा है। अस्तु जो कुछ समय लगाहो उसे मनमें धरलो पीछे उस गोलेको थोड़ा दीपकके ज्योतिपुंजके सामनेसे दक्षिणकी ओर हटादो ऐसा कि दीपकका ज्योतिपुंज मध्यवाली परिधिसे उत्तरकी ओर होजावे। इतना करके गोलेको फिर घुमादो। तब तुम क्या देखोगे कि तुम्हारे स्थानको पहिले चक्करमें अंधकारमें रहनेके लिये जितना समय लगा था उससे कम समय इस चक्करमें अंधेरेमें रहनेको मिला है और उजेलेमें रहनेको अधिक समय मिलाहै। परंतु याद रहे कि गोलेके चक्करके बेगमें कुछभी न्यूनाधिक न होने पावे। नहीं तो फरक पड़ जावेगा। फिर यदि तुम गोलेको कुछ और दक्षिण हटाकर उसी वेगसे घुमाओ तो औरभी तुम्हारे देशको अंधेरेमें रहनेका समय कम होजावेगा। निदान जैसे जैसे गोलेको दक्षिण बढ़ाते जाओगे वैसे वैसे तुम्हारे देशको अंधकारमें रहनेका समय तो कम और उजेलेमें रहनेका समय अधिक होता जावेगा। यह बात कबतक होती रहेगी कि जब तक सूर्य उत्तरकी ओर हटता हुआ तुम्हारे स्थानकी

उसकी मा कहे कि " बेटा तुम्हारा बाप यही अभागा है"तो वह डपटकर कह सकता है कि चल परे हो तेरी साक्षी इस विषयमें प्रमाणिक नहीं । क्योंकि हो सकता है कि तू अपना कुकर्म छिपानेके लिये ऐसा कहती हो । हम कहांतक कहें सारांश यह है कि सोतेको जगाना सहज है पर जागतेकों जगाना बड़ा कठिन है ॥

अब हम अपने पाठकोंको भगवान् वाल्मीकिजीके कथनको ज्योतिषके आचार्यों के कथनसे मिलाकर दिखला देतेहैं । पाठको ! अंगेरजोनकशेकी लंकाका उत्तरीय छोर करीब दश अक्षांशपर है । निरक्षसे दश अक्षांशकी दूरी ६९० मीलसे कुछ अधिक होगी । क्योंकि एक अक्षांशकी दूरी ६९ मीलसे कुछ अधिक है । फिर इस ६९० मीलमें ६० मील और जोड़े जो भारतवर्षके दक्षिणी और नकशेकी लंकाके उत्तरीय सिरेके बीच अन्तर है । इस प्रकार साढ़े सातसौ मील होगये । जिनके पौनेचारसौ कोश होते हैं । अब रहा २५ कोशका फरक सो पाठकोंको जानना चाहिये कि कोशकी नापमें देशदेशमें कुछ न कुछ भेद रहताही है तथा समय समयमें भी कुछ नापमें अदल बदल हुआही करताहै आजकलभी इसी भारतवर्षमें कहीं तो अंग्रेजी मील पक्का आधकोश समझाजाता और कहीं आधकोशसे कम और कहीं आधकोशसे ज्याद: समझाजाताहै पाठको ! संभव है कि जो निरक्षस्थान आजकल अंगेरजी मीलके हिसाबसे पौनेचारसौ कोस ठहरताहै वही स्थान वाल्मीकिजीके समय उनके देशकी नापसे पूरे चारसौ कोश ठहरे । इस प्रकार ज्योतिषके आचार्य वाल्मीकिजीको सञ्चा ठहराते और वाल्मीकिजी ज्योतिषके आचार्योंको सञ्चा ठहराते अस्तु अब रही प्राचीन लंकाके समुद्रमें डूब जानेकी बात सो कोई आश्चर्यकी बात नही है । क्योंकि भूकम्प ज्वालामुखी आदि कई कारणोंसे प्राय: ऐसा हुआ ही करता है कितने प्राचीन स्थान इन्हीं कारणोंसे आज जलमग्नहैं और कितने नये नये टापू पैदा होगये । किसी दिन हिमालयके स्थानपर समुद्रलहरानेकी बात कही जाती है । भला वह तो बहुत दिनकी बात होगी पर नैनीताल जो स्थान है सो कहा जाता है कि कुछ दिन पहिले वहां एक ज्वालामुखी पहाड़ था परन्तु आज कल अथाह जल वहां भराहै फिर देखो आफ्रिकाके सेहरा नामक मरुस्थलमें कुछ दिन पहिले बड़ी बड़ी नदियोंके होनेका पता बखूबी मिलताहै पर आजकल वहां जलका एक बिन्दुभी नहीं लब्ध होता।इन उदाहरणोंसे अतिस्पष्टहै कि कालपाकर जलका स्थल और स्थलका जल होजाना पृथिवीका स्वाभाविक धर्म्म है । जब यही बात है तब हमारा अनुमान कि प्राचीन लंका जलमग्न होगई और यह टापू जिसे अंगरेज लोग आजकल लंका कहतेहैं एक उसी लंकाके सीधमें पैदा होगया ज्योतिषके आचार्योंके तथा भगवान् वाल्मीकिजीके वचन प्रमाणसे सञ्चा अनुमानहै मानना न मानना पाठकोंका कामहै ॥

अक्षांशमें अपने रहनेके स्थानकी कल्पना करके उस स्थानपर एक चिन्ह कर दो चाहे सुई गाड़दो । फिर एक चिन्ह विषुवरेखापर लंकास्थानका करदो और उसी लंकासे उत्तरकी ओर परिधिकी चौथाईपर मेरुका चिन्ह करदो। इतना करके एक दीपक जलाके रक्खो और उसे सूर्य मानलो । फिर उस गोलेको प्रथम दीपकके सामने ऐसा रक्खो कि गोलेकी बीचोबीचवाली परिधि और दीपकके ज्योतिपुंजका ठीक आम्ना साम्ना रहे । इतना करके पास एक घड़ी रखलो । तब उस गोलेको एक बार घुमादो । उस घुमानेमें तुम देखोगे कि जो स्थान पहिले उजेलेमें थे सो धीरे धीरे अंधेरेकी ओर जाते हुए अन्तमें उसी अंधेरेमें जाकर लीन होजातेहैं तथा अंधेरेके स्थान उजेलेकी ओर चलकर अन्तमें प्रकाशमान होजातेहैं । यह दृश्य गोलेके एक बार घूमनेसे हुआ कि अंधेरेके उजेले और उजेलेके अंधेरे होगये इन्हीं दो भागोंमेंसे उजेलेको दिन और अंधेरेको रात कहते हैं । फिर तुम इस बातपर भी ध्यान देओ कि विषुव रेखाके सामने सूर्यके रहते गोलेमें जो हमारा स्थान अंधेरेमें था उसे उजेलेमें आकर फिर अंधकारको पहुंचनेमें कितना समय लगा है। अस्तु जो कुछ समय लगाहो उसे मनमें धरलो पीछे उस गोलेको थोड़ा दीपकके ज्योतिपुंजके सामनेसे दक्षिणकी ओर हटादो ऐसा कि दीपकका ज्योतिपुंज मध्यवाली परिधिसे उत्तरकी ओर होजावे । इतना करके गोलेको फिर घुमादो । तब तुम क्या देखोगे कि तुम्हारे स्थानको पहिले चक्करमें अंधकारमें रहनेके लिये जितना समय लगा था उससे कम समय इस चक्करमें अंधेरेमें रहनेको मिला है और उजेलेमें रहनेको अधिक समय मिलाहै । परंतु याद रहे कि गोलेके चक्करके बेगमें कुछभी न्यूनाधिक न होने पावे । नहीं तो फरक पड़ जावेगा । फिर यदि तुम गोलेको कुछ और दक्षिण हटाकर उसी बेगसे घुमाओ तो औरभी तुम्हारे देशको अंधेरेमें रहनेका समय कम होजावेगा। निदान जैसे जैसे गोलेको दक्षिण बढ़ाते जाओगे वैसे वैसे तुम्हारे देशको अंधकारमें रहनेका समय तो कम और उजेलेमें रहनेका समय अधिक होता जावेगा । यह बात कबतक होती रहेगी कि जब तक सूर्य उत्तरकी ओर हटता हुआ तुम्हारे स्थानकी

ठीक सीधमें न आजावे। जब वह ठीक सीधमें आजावेगा तब गोलेके घुमाने से जो समय अंधेरे वा उजेलेमें रहनेका तुम्हारे देशको मिलेगा उससे कम कभी नहोगा चाहे सूर्य जितना उत्तर हटता जावे।इसका कारण अतिस्पष्ट है। क्यों कि भूमध्यस्थित विषुव रेखाकी जो योजनसंख्याहै उससे उत्तरीय वा दक्षिणीय अक्षांशोंकी परिधिकी योजनसंख्या क्रम क्रमसे छोटीहै। तब यह बात सहजसे जानी जासकती है कि सूर्य भूमध्यरेखास्थित देशकी अपेक्षा उन अक्षांशस्थित देशोंमें पहिले तो दीखेगा और पीछे डूबेगा। इस प्रकार उत्तरायणमें उत्तरीय अक्षांशस्थित देशोंकेलिये दिनमानका बढना तथा रात्रिमानका घटना सिद्ध होगया इसीप्रकार दक्षिणायनका हालभी जानो जब दक्षिणायन सूर्य होता है अर्थात् भूमध्यस्थित रेखासे जब सूर्य दक्षिणको हटता जाता है तब दक्षिणीय अक्षांशस्थित देशोंके लिये दिनमानकी तो वृद्धि तथा रात्रिमानका ह्रास होताजाता है परन्तु जिस समय सूर्य दक्षिणीय देशोंका दिनमान बढ़ाता है उसी समय उत्तरीय देशोंका दिनमान घटकर रात्रिमान क्रमशः मध्यरेखासे उत्तरकी दूरीके अनुसार बढ़ता जाता है। इसका कारण यह है कि दक्षिण-की ओर हटताहुआ सूर्य भूमध्यरेखासे नीचेको चलाजाता है सो जबतक वह हमारे देशोंके दक्षिणीय क्षितिजपर न आवे तब तक हमारे उत्तरीय देशों-को न दीखेगा। इसी प्रकार दक्षिणीय देशोंके रात्रिमान बढ़नेका कारण जानना चाहिये। इन बातोंसे दो बातें सिद्ध हुई एक तो यह कि निरक्ष देशमें जहां पृथिवीकी परिधिकी योजनसंख्या सबसे अधिक है वहां दिन रात दोनों तुल्यमान अर्थात् तीस तीस दंडके होते हैं दूसरी बात यह सिद्ध हुई कि उस मध्यविषुवरेखासे उत्तर वा दक्षिण दूरीके समान दिन तथा रात्रिमान घटता बढ़ता रहता है यहांतक कि विषुवरेखासे उत्तर वा दक्षि-णकी पृथिवीकी परिधिकी चौथाईपर अर्थात् मेरु और बड़वानलस्थानपर छः छः महीनेके दिन रात होते हैं।

इस बातकी स्पष्टताके लिये नम्बर ७ और नम्बर ८ तथा नम्बर ९ का चित्र देखो उनमेंसे नम्बर ७ वालेको विषुवरेखापर स्थित सूर्यके कारण जो

दृश्य होता है उसका चित्र समझना तथा नम्बर ८ वाले और नम्बर ९ वालेको क्रमसे उत्तरायण और दक्षिणायनके दृश्योंके चित्र समझना ॥

देखो जो कुछ तुमको लिखकर तथा चित्र दिखलाकर हमने समझाया यही बात भास्कराचार्य अपने सिद्धान्तमें लिखते हैं । यथा-

श्लोक-आदौ स्वदेशेऽथनिरक्षदेशे सूर्योदयो ह्यस्तमयो न्यथातः ॥ ऋणंग्रहेऽस्मादुदये स्वमस्ते फलं चरोत्थं रविसौम्यगोले ॥१॥ याम्ये विलोमं खलु तत्र यस्मादु-न्मण्डलं स्वक्षितिजादधस्तात् ॥

अर्थ-जब उत्तर गोलार्धमें सूर्य रहता है, तब पहिले अपने देशमें उसका उदय होता है, पीछे निरक्ष देशमें होताहै, और अस्त इसके विपरीत होता है अर्थात् पहिले निरक्षदेशमें अस्त होता है, पीछे अपने देशमें । इसलिये चरफल अर्थात् अन्तरका काल निरक्षदेशके दिनमानमें अपने देशके उदय जाननेके लिये घटादेना चाहिये, और अस्तकाल जाननेके लिये जोड़देना चाहिये, और यदि सूर्य दक्षिणगोलमें हो तो सब क्रिया उलटी करनी चाहिये । क्योंकि उन्मंडल अपने क्षितिजसे नीचे है ॥

इतना बतलाकर फिर दिनमानके छोटे बड़े होनेका कारण भास्कराचार्य कहते हैं कि-

श्लोक-अतश्च सौम्ये दिवसो महान् स्यात् रात्रिर्लघु र्व्यस्तमतश्च याम्ये॥ द्युरात्रवृत्ते क्षितिजादधःस्थे रात्रि र्यतः स्याद्दिनमानमूर्ध्वे॥१॥सदा समत्वं द्युनिशोर्निरक्षे नोन्मण्डलं तत्र कुजाद्यतोऽन्यत् ॥

अर्थ-इसीसे उत्तर गोलमें दिन बड़े होते और रात छोटी,और इसीसे दक्षिण गोलमें इसके विपरीत होताहै अर्थात् रात बड़ी और दिन छोटा । क्योंकि अहोरात्रखण्ड जितनी देरतक अपने क्षितिजके नीचे रहे उतनाही काल

रात्रि तथा ऊपरके रहनेके कालको दिन कहते हैं और निरक्षमें दिन रात सदा समान होतेहैं । क्योंकि क्षितिजसे दूसरा उन्मंडल नहीं है ॥

इन वार्तोको सुनसमझकर पाठकोंके मनमें यह शंका होसकतीहै कि जैसा इस परिच्छेदमें वर्णन कियागया उससे सिद्ध होताहै कि वैशाख महीने अर्थात् मेषके सूर्यसे उत्तरायण और कार्त्तिक महीनेसे अर्थात् तुलाके सूर्यसे दक्षिणायनका आरंभ होताहै परन्तु धर्म्मग्रंथोंमें जैसा कि पुराणोंमें उत्तरायण माघ माससे अर्थात् मकरके सूर्यसे तथा दक्षिणायन श्रावणमास अर्थात् कर्कके सूर्यसे मानाहै तो इस भेदका क्या कारणहै सचमुच उन आचार्योंकी भूलहै अथवा इसमेंभी कोई गुप्तभेदहै?

अय प्यारे भाइयो! यदि तुम्हारे मनमें ऐसी शंका उपजी हो तो उसकाभी समाधान सुनलो । " उन आचार्योंकी भूलहै" ऐसा कहना तो दूर रहे वरन उनकी भूलकहनेका सोचभी मनमें न लाना चाहिये। क्योंकि जिन्होंने अपने बुद्धिबलसे आकाश पातालकी वातें थहा डालीं उनमें भूलकी कल्पना करना और अंधकार करके सूर्यका नाश मानलेना एकही वातहै । परंतु इस भेदमें कुछ गुप्त कारण अवश्यहै । अव उस कारणको हम तुम्हें वतलातेहैं । हमारे शास्त्रोंमें उत्तरायणको मेरुपर रहनेहारे देवताओंका दिन मानाहै तथा दक्षिणायन रात मानी गईहै और दैत्योंका दिनरात इसके विपरीत माना गयाहै । अस्तु जो हमारा वर्ष है वह देवदैत्योंका अहोरात्रहै जैसाकि हम मेरु तथा वड़वानलस्थानपर छःछः महीनेके दिनरात सिद्धभी करचुकेहैं ॥

अव देखना चाहिये कि यह साठ दंडवाला हम लोगोंका अहोरात्र जोहै उसके माननेकी क्या रीति है? जब हम इस बात पर विचारकी दृष्टि डालते हैं तो क्यादेखतेहैं कि भारतवर्षहीमें तीन रीतियां चलतीहैं । जैसा

---

१ "मेरुपर देवता रहतेहैं" ऐसा कहनेका यह आशय नहींकि खास मेरुकी भूमिपर रहतेहैं बल्कि ऐसा तात्पर्यहै जैसा कोई इपरके विषयमें बोलेकि जब सूर्य माथेपर हुआ तब इत्यादि क्योंकि देवताओंके पाँव तो कभी पृथिवीपर पड़तेही नहीं सोचाहै देव मेरुपर अधिकार रखतेहों चाहे उसके ऊपर कुछदूरपर उनके लोक हों कुछ ऐसाही अभिप्राय "मेरुपर देवता रहतेहै" ऐसा कहनेका है ॥

मुसलमान लोग सूर्यास्तसे लेकर दूसरे दिनके सूर्यास्ततक अपना अहोरात्र मानतेहैं। फिर अंगरेजजातिके लोग जोहैं सो आधीरातसे आधीराततक अपना अहोरात्र मानतेहैं। प्रमाण चाहोतो इन दोनों जातियोंके आलिम फाज़िल लोगोंसे पूछदेखो और हिन्दूलोग जो हैं उनके यहां अहोरात्र माननेकी दो रीतियां हैं एक तो सूर्योदयसे दूसरे सूर्योदयतक जैसा जन्म पत्रियोंमें उनसठ दंडका इष्टकाल रहते भी पहलेही दिनका वार लिखा जाता है दूसरी रीति अंगरेजोंकीसी है जैसा लोग पिछली रातमें देखेहुए स्वप्नके वर्णन करनेंमें दूसरे दिन कहते हैं कि " आजरात मैंने ऐसा स्वप्न देखा" फिर पाणिनिजी भी अपने व्याकरणशास्त्रमें अद्यतन काल हिंदीके (आज) के अर्थमें लिखते हैं जिसका अर्थ समझाजाता है कि पिछली आधी रातसे अगली आधीराततक। अस्तु। इन बातोंसे अहोरात्रके मानने में तीन भेद सिद्ध होगये ॥

अब इन्ही तीन रीतियोंमेंसे आधीरातसे आधीराततक अहोरात्र मानने की रीतिपर देवताओंका भी अहोरात्र पुराणादि धर्म्मग्रंथोंमे माना गया है। यह न केवल मनसे मानलेनेकी बात है वरन ऐसा माननेमें भी मुख्य कारण है कि साठ दंडवाले अहोरात्रके माननेहारे जो हम लोग हैं उनमेंसे जो सात्विक प्रकृतिके जन हैं वे सदा पिछली रातमें उठकर भगवत्‌आराधन धर्म्मग्रंथके अध्ययन तथा शौचादि क्रियासे निवृत्त होकर स्नान ध्यान पूजा पाठ कथा वार्त्ता आदि सत्कर्म्मोंसे छुटी पाकर भोजन करकराके संसारिक कामोंमें लगते हैं। ऐसा करनेहारोंको लोग सात्विक ही कहकर संतुष्ट नहीं होते वरन उनकी प्रशंसाके प्रसंगमें कहडालते हैं कि ये तो साक्षात् देवता हैं। भला प्रायः समत्रिगुणात्मक शरीर धारणकरनेहारे मनुष्य कुछ ही सत्वगुणकी अधिकताके प्रभावसे पिछली रातमें उठकर सात्विक कर्म्म करनेके कारण यदि सात्विक कहलानेसे अधिक साक्षात् देवता कहलाते हैं तो सत्वगुणप्रधान देवशरीर धारणकरने हारे देवतालोगोंके अहोरात्रकी प्रवृत्ति आधीरातसे मानना कितना युक्तियुक्त न समझा जावेगा॥ इसीसे तो हमारे शास्त्रोंमें समस्त शुभकर्म करनेकी आज्ञा उत्तरायण

में है जो देवताओंके अहोरात्रमेंसे धर्म्मवेला या देववेलाके समानहै । फिर उन शुभ कर्म्मोंमेंसे यज्ञोपवीतनाम संस्कार जिसमें वेदमाता गायत्री महामंत्रका उपदेश तथा वेदारंभ होताहै उसके करनेके लिये इन उत्तरायण के छः महीनोंमेंसे चैत्रमास और मीनका सूर्य जो उत्तम मानागयाहै उसका कारणभी तो यह है कि वह समय उस कर्म्मके लिये अतियोग्य है क्योंकि सचमुच वह महीना देवताओंके अहोरात्रमेंसे पिछले पहरकी रात अर्थात् भातकी पुनीत संध्याका समय है । गायत्रीके लिये संध्याकाही समय श्रुतिस्मृतिसम्मत है । आजभी विद्यार्थी इस बातका अनुभव करसकतेहैं कि समस्त अहोरात्रमेंसे तारा रहते भोरके समयका याद किया हुआ पाठ अच्छी तरहसे स्मरणमें रहता है । हमारे शास्त्रोंमें तो यही विशेषता है कि उनमें बातबातपर देशकाल पात्रका विचार किया गया है सब धान बाइस पसेरी तौलनेकी रीति और " अंधेरनगरी चौपट्ट राजा टका सेर भाजी टका सेर खाजा " की कहावतके आधारपर भोरकी गीत सांझको नहीं गाई गई । पर हाय इस कठिन कराल कलिकालमें अपार विचारके भंडार हमारे शास्त्र संसारमें सत्कार न पाकर निःसार क़रार पाते हैं । मुह फट्ट लोग झट्टसे कहदेते हैं इनमे क्या धरा है यह सब तो पोपलीला है । भाइयो ? हमें दुःख तो इसी बातका है कि और लोग बिनसमझे बूझे ऐसा कहें तो कहें पर तुम जो हिन्दू हो और अपने आचार्योंकी बुद्धिगंभीरताको भली भांति जानते हो सो कैसे उन अनजानोंके समान कहते हो । तुम्हारेही ऐसा कहनेसे हमारे दुःखका पार नहीं रहता, अथवा दुःख करना भी हमारी भारी भूल है । क्योंकि जो हम ऐसी ऐसी बातोंमें दुःख *मानने लगेंगे तो संसारमें हमारा जीवन दुःखसागरमें डूबता उतराता रहेगा* क्योंकि संसारकी तो यह प्रकृतिही है कि उपयोगीका अनादर कर अनुपयोगीको माथे चढ़ाता है । क्या हम नहीं देखते कि इस पाजी संसारमें हरएक वस्तुओंको छीलछाल तथा पीटपाट कर अधिक शोभायमान बना देनेवाला इतनाही नहीं वरन अमृतोपम भोजन और वस्त्रका भी देनेवाला लोहा सोनेसे हजारगुना हजार ही क्यों बल्कि लाखगुना लाखसे भी

अधिक करोड़गुना उपयोगी होने परभी निकम्मे सोनेकी अपेक्षा अत्यन्त तुच्छ ठहरकर निरादर सहता है । किसीने सच कहा है कि " साचे कोऊ न पूछे झूठे जग पतिपाय । गली गली गोरस विके मदिरा बैठ विकाय" परन्तु हमारे प्यारे बुद्धिउँजियारे सारे पढ़नेहारे इस बातका विचार करें कि स्वर्णाभरणधारियोंके देदीप्यमान मुकुटांगदादि भूषण इन्हीं लोहखंडोंसे गढ़गढ़कर बनायेगये हैं, या उन्होंने खुद माथा मारमार कर तैयार कियाहै ॥

हे प्रियपाठको यह मत समझो कि देवताओंके आधीरातसे माननेकी बात जो हमने तुम्हे सुनाई है सो केवल हमारा तर्क है । नही नही हमारा तर्क नही है । इस विषयमे हम तुम्हें बड़े बड़े धुरंधर पंडितोंके वचनोंका प्रमाण दिये देते हैं । पहिले तुम पडितमण्डलीमण्डन श्रीभास्कराचार्यका कथन सुनो ।

श्लोक–दिनं सुराणामयनं यदुत्तरं निशेतरत् सांहिति कैःप्रकीर्त्तितम् ॥ दिनोन्मुखेऽर्के दिनमेव तन्मतं निशा तथा तत्फलकीर्त्तनाय तत् ॥ १ ॥

अर्थ–उत्तरायण जो देवताओंका दिन और दक्षिणायन रात पुराणोंमें लिखी गई है सो दिन हेनेकी दिशाकी ओर सूर्यके झुकतेही दिन तथा वैसीही रात तत्तत्समयानुकूल फल कहनेके अभिप्रायसे कही गई है । प्रमाण तो यद्यपि बहुतसे हैं परतु ग्रन्थ बढजानेके भयसे हम तुमको केवल एक आचार्यका वचन और सुनाये देतेहैं । उन आचार्यका नाम केशवार्क है ॥

श्लोक–सिद्धान्तपक्षस्तु परं दिनार्धान्निशानिशार्धात् परतो दिनश्रीः ॥ एवं पुराणे गणिते च साम्यमर्कायनाभ्यां सदसत्फलेषु ॥ १ ॥ कर्कं गतेऽर्के हि सुरापराह्णः फलं पुना रात्रिवदाहुरस्य ॥ नक्रं गते चापररात्रमेपामेतत्परं वासरवत्स्मरन्ति ॥ २ ॥

केशवार्कजी कहते हैं कि दिनके आधेके बाद रात और रातके आधेके बाद दिन यह सिद्धान्तपक्ष है इसप्रकार पुराण और गणित ग्रन्थोंमें सूर्यके दोनों अयनोंके द्वारा अच्छे बुरे फलोंके विषय साम्य अर्थात् समता आतीहै॥ १॥ कर्कराशिको सूर्यके पहुँचतेही देवताओंका अपराह्नकाल होताहै । सो इसका फल रात्रिके समान कहाहै । उन्हीं देवताओंकी पिछली रात्र मकरके सूर्य होतेही होतीहै । इसके आगेका समय दिनके समान मानाजाताहै ॥ २ ॥

यहांतक तो हमने अपने पाठकोंको मनुष्योंके दिनरात तथा देवताओंके दिनरातके विषयमें समझाया । अब आगे पितरोंके दिनरातके विषय समझाते हैं ।

पाठको हमारे यहांजो पितरोंका अहोरात्र एक महीनेका माना गयाहै अर्थात् कृष्णपक्ष उनका दिन और शुक्लपक्ष रात मानीगईहै उसकी वदना भी ठीक ऐसीही जानो । पितरोंका वास चन्द्रलोकके ऊपरहै । वह चन्द्रमा पृथिवीकी परिक्रमा देताहुआ महीनेमें एकवार अपनी कीलपरभी घूमजाताहै । यह बात चन्द्राकारनिरूपणनाम परिच्छेदमें भली भांति दिखलाई जावेगी । जबकि चन्द्रमा अपनी कीलपर मासमें एकवार घूमजाताहै तो सिद्ध होगया कि चन्द्रका एक गोलार्ध पंद्रह दिनतक सूर्यकी ओर रहनेसे प्रकाशमान रहताहै और दूसरा गोलार्ध सूर्यसे विपरीत दिशामें रहनेसे अंधकार पूर्ण रहता है । जिस समय हमारे सामनेवाला चन्द्रका गोलार्ध घूमनेसे अंधेरा होने लगताहै वह समय कृष्णपक्ष कहाताहै । फिर जब हमारे सामनेवाला चन्द्रका गोलार्ध उजेला होने लगताहै । तब शुक्लपक्ष कहाजाता है । जैसेंजैसे हमारे सामनेवाला गोलार्ध अंधेरा होने लगताहै वैसेंवैसे चन्द्रका दूसरा गोलार्ध जिसपर पितरोंका वासहै उजेला होने लगता है । फिर जैसे जैसे हमारे सामनेवाला गोलार्ध उजेला होने लगाता है वैसे वैसे वह दूसरा गोलार्ध जिसपर पितर रहते हैं अंधेरा होने लगाता है । निदान जिस दिन हमारे सामनेवाला चन्द्रगोलार्ध सब अंधेरा होजाता है उसी दिन पितरोंवाला चन्द्र गोलार्ध सब उजेला हो जाता है। उसी दिनको हम अमावस कहते हैं । जिस दिन हमारी अमावस होती है।

उसी दिन खमध्यमें सूर्य होनेसे पितरोंकी दुपहर होती है। फिर इसी प्रकार जिस दिन हमारी पूर्णिमा होती है उसीदिन पितरोंकी सूर्यके निचले गोलार्धके बीचो बीच रहनेसे आधीरात होती है। फिर जब हमारी अमावस उन पितरोंकी दुपहर और पूर्णिमा आधीरात है तो अर्थहीसे सिद्ध होगया कि हमारी कृष्णपक्षकी अष्टमी तो उन पितरोंका सूर्योदय काल तथा शुक्लाष्टमी सूर्यास्तसमय होगा। इसमें कुछभी संदेह नहीं। कृष्णाष्टमीको सूर्योदयकाल यद्यपि वास्तविक है तथापि हमारे यहां जो कृष्णप्रतिपद्सेही पितरोंका दिन माना है उसका भी अभिप्राय देवताओंके अहोरात्रकी भांत आधीरातके बादही अहोरात्रकी प्रवृत्तिका है॥

अब हम प्रमाणके लिये भास्कराचार्यके श्लोक लिखकर उनकी व्याख्या भी हिंदीमें कर देते हैं॥

श्लोक–दिनं दिनेशस्य यतोऽत्र दर्शने तमी तमोहन्तुरदर्शने सति॥ कुपृष्टगानां द्युनिशं यथा नृणां तथा पितॄणां शशिपृष्ठवासिनाम्॥ १॥ विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्तः स्वाधः सुधादीधितिमामनन्ति॥ पश्यन्ति तेऽर्कं निजमस्तकोर्ध्वे दर्शे यतोऽस्माद् द्युदलं तदेषाम्॥२॥ भार्धान्तरत्वान्न विधोरधःस्थं तस्मान्निशीथः खलु पौर्णमास्याम्॥ कृष्णे रविः पक्षदलेऽभ्युदेति शुक्लेऽस्तमेत्यर्थत एव सिद्धम्॥ २॥

अर्थ–जैसा भूतलवासियोंके लिये सूर्यके दर्शनकालमें दिन और उसके अदर्शनकालमें रात होती है वैसेही चन्द्रलोकवासी पितरोंकाभी दिन रात होता है॥ १॥ चन्द्रके उपरिभागमें पितरलोग वसतेहुए अपने नीचे चन्द्रको मानते हैं। वे अमावसके दिन अपने मस्तकपर सूर्यको देखतेहैं।

१ आकाशका मध्य।

इस लिये वह उनकी दुपहर है ॥२॥ छः राशिके अन्तर होनेसे चन्द्रके नीचे स्थित सूर्यको न देखनेसे पूर्णिमाके दिन उनकी आधी रात निश्चय है। कृष्णपक्षके आधेमें सूर्यउदय होता है और शुक्लपक्षके आधेमें अस्त होताहैं । यह बाततो अर्थहीसे सिद्ध है ॥ ३ ॥

इति गोलतत्वप्रकाशिकायामहोरात्रनिरूपणो नाम पंचमः परिच्छेदः ।

ऋतुपरिवर्त्तननिरूपणो नाम षष्ठः परिच्छेदः ।

हम अपने पाठकोंको पृथिवीके चल होनेसे जो देश देशमें दिनमानकी भिन्नता होती है उसके विषय समझा चुके हैं । अब उसी समय शीतोष्णताके वृद्धिक्षयसे देशदेशमें जो ऋतुपरिवर्त्तन होता है और जिसके होने ही से इस चराचर सृष्टिका पालन पोषण होता है उसे सुनाते हैं । जिसके जाननेसे उस परात्पर सर्वज्ञानी सर्वशक्तिमान् भगवान्‌की दया हमपर विशेष है इस बातके सिवा उसकी विलक्षण बुद्धिका भी कि वह कैसे छोटे छोटे कारणोंसे बड़ेबड़े कार्य सम्पादन करता है, अच्छा परिचय मिलता है । इस प्रकार उसकी अपार दया और बुद्धिका विचार करके बातबातमें लाचार मनुष्यमात्रको उचित है कि उसके उपकारोंको न भूल उसही के गुण गाया करै ॥

प्रिय पाठको ! देखो यदि यह भूगोल जिसपर हम सब बसते हैं क्रांतिवृत्तपर[1] लंबरूपसे रक्खा जाता जैसा कि नत्थमें मोती पड़ारहता है तो इस पृथिवीपर कोई विशेष ऋतु न होती और उसके न होनेसे हमें जो इस वर्त्तमानदशामें भांति २ के अन्न तथा नानाजातिके फलपुष्प मिलते हैं सो कुछभी न मिलते और न तृण खाकर जीनेहारे पशुओंके दुग्ध घृत आदि रसही मुअस्सर होते जो हमारे सर्व संसारिक सुखकी सामग्रीरूप हैं। इतनाही क्यों? वरन बुद्धिवृद्धिकारक होनेसे अमरपदके हेतु अमृतस्वरूप

१ क्रांतिवृत्त उस घेरेको कहते हैं जिसमें रहकर यह पृथिवी सालभरमें सूर्यकी चारों ओर घूम आती है ।

भी हैं। क्योंकि क्रान्तिवृत्तपर लंबरूप पृथिवीके रहनेसे सदा सर्वत्र भगवान् मरीचिमालीकी मरीचिमाला एक रूपसे पड़ा करती। अत एव तपन वा शीत समानरूपसे सर्वत्र व्यापती। उसमें कुछभी न्यूनाधिक न होता! जैसा कि हम नत्थके बीचोबीच ज्योतिपुंजको रखकर उसके मोतीको घुमानेके द्वारा भली भांति समशीतोष्णता रहनेका कारण जान सकते हैं। भला अब तुमही सोचो कि ऐसी दशामें जब कि भगवान् प्रतापनिधि सूर्यदेवका अधिक ताप देशदेशमें न व्यापता तब नदी-नदके उमड़ानेहारे चातक मयूरके परम प्यारे कारे कारे अनियारे बदराओंकी घटाकी छटा कहां जुटा करती। फिर सृष्टिमे वृष्टिके न होनेसे दृष्टिको प्यारी वेलि वृक्षोंकी हरियारी हमारी दृष्टिमें कहां पड़ा करती। इन बातोंके न होनेसे हम जो इस समय भांति भांतिके स्वादिष्ठ मिष्ट मधुर भोजन करनेसे अधिक संतुष्ट होकर दिन दिन पुष्ट होते हैं सो सब कहांसे होता। हमतो संसारमें बंधुवेकी भांति एकही दशामें अपना जीवन बिताते। सच तो यह है कि क्रांतिवृत्तपर पृथिवीके लम्बरूप होनेसे हम जीते ही नहीं। पर धन्य है उस दयासिंधु जगद्बंधुको जिसने अपनी अचिन्त्य बुद्धिवैभवसे भूगोलको क्रान्तिवृत्तपर लम्बरूपसे न धरकर ऐसी रीतिसे स्थापित कियाहै कि जिससे हमारी सारी पूर्वोक्त विपत्ति दूर होगई॥

यह भूगोल निजधुरीसे साढ़े छांसठ ६६½ अंशके कोणसे क्रांतिवृत्तपर स्थापित है। पर इसका निरक्ष स्थान निजधुरीसे लंबरूप है। इस लिये निरक्ष स्थानसे क्रान्तिवृत्ततक प्रायः साढे तेवीस २३½अंश का कोण बनताहै। इस प्रकार पृथिवीकी स्थीति होनेसे फल यह हुआ कि

---

१ अशकृत कोण जहा कही पाठकोंको लिखा मिले उसे पाठक इस प्रकार समझलेवें वे एक चौकीपर अथवा धरातलपर एक शंकु अर्थात् एक सीधी लंबी लकडी जैसा कि हल को खड़ा करें उस रूपकी ऊंचाईको नब्बे ९० अंश समझे। फिर उस शंकुको धरातलपर बेडा लंबरूप गिरा देवें। ऐसे रूपको वे शून्य अंशकी ऊंचाई समझें। फिर शून्य अंश के स्थानसे उस लंबरूप शंकुको धीरे धीरे ऊंचा करनेलगें और ऊंचा करते करते-

जब सूर्य इस भूगोलके उत्तरीय गोलार्धपर आता है तब उस गोलार्धके देश दक्षिणीयगोलार्धके देशोंकी अपेक्षा सूर्यके अधिक समीप हो जाते हैं अत एव उन देशोंपर सूर्यकी तपन अधिक पड़ती है । इसी प्रकार सूर्यके दक्षिणीयगोलार्धपर हो जानेसे उस गोलार्धके देशोंपर सूर्यकी तपन अधिक हो जाती है और इस उत्तरीयगोलार्धके देशोंमें ठंड बढ़जाती है । ठंड या तपनके बढ़ने घटनेका मुख्य कारण यही है । इस लिये सालभरमें सचमुच दोही ऋतु कहनी चाहियें अर्थात् शीत ऋतु और उष्ण ऋतु । पर परम शीत और परम उष्णके बीचो बीचका समय समशीतोष्ण काल होनेसे दो ऋतु और उत्पन्न हुई । इस प्रकार वर्षके आरंभकालमें जो समशीतोष्ण काल होता है उसका नाम प्राचीन ऋषियोंने वसन्त रक्खा । इसके पीछेकी ऋतुका नाम ग्रीष्म रक्खा । फिर वसन्तसे छः महीने बाद जो सम शीतोष्ण कालकी ऋतु आतीहै उसका नाम उन्होंने शरद् रक्खा और उसके बादकी ऋतुका नाम हेमन्त रक्खा । येही चार ऋतु संसारमें मुख्य हैं पर भारतवर्षीय महानुभाव विद्वानोंने परम उष्ण और परम शीत ऋतुओंसे संसारमें जो दो फल देखे जाते हैं उनके होनेके समयोंकोभी ऋतु कहकर उनके पीछे अर्थात् परम उष्ण और परम शीतकी ऋतुओंके पीछे जोड़ दिया । उनका ऐसा करना सार्थकही है । क्योंकि ऋतु शब्दका तो अर्थ ही यह है कि किसी वस्तुका नियमित समय पर देखा जाना । इसीसे तो स्त्रियोंके मासिक धर्मको भी ऋतु कहते हैं । अस्तु इन गौण दो ऋतुओंमेंसे एकको जो परम उष्ण कालकी फलरूप है; वर्षा कहकर ग्रीष्मके पीछे जोड़ दिया । और दूसरी ऋतुको जो परम शीतकालकी फल रूप है; शिशिर कहकर हेमन्तके पीछे जोड़ दिया । इन दोनों ऋतुओंमें

–अंतमें उसी नब्बे अंशकी ऊंचाईमें अर्थात् सीधा शंकुको खड़ाकर देवें।ऐसा करनेमें वे देखेंगे कि शंकु शून्य अंश और नब्बे अंशके बीचके स्थानोंमें कोण बनाता हुआ उठेगा सो शून्य अंश और नब्बे अंशके बीचके स्थानको नब्बे हिस्सोंमें बाँटदेनेसे एक एक हिस्सेमें जो ऊंचाई मिले उसी ऊंचाईको अंशकी संख्याके अनुसार बढ़ाकर पाठक अंश कृत कोणको जान लेवें ।

फलका रूप तो एकही है पर गोलार्धके भेदसे भिन्न भिन्न रूप देखे जातेहैं अत एव नामभी भिन्न भिन्न होनेही चाहियें। यथा जब उत्तरीय गोलार्धमें परम क्रान्तिपर सूर्य पहुंचताहै तब तपन विशेष होनेसे पृथिवीका जल भाफरूप बनकर ऊपर चढ़जाता और वही फिर पानीके रूपमें इस पृथिवीपर गिरने लगताहै। परवही पानी दक्षिणीय गोलार्धके देशोंमे उस समय हिम अर्थात् बरफ होकर गिरताहै। क्योंकि उस समय वहां अधिक शीतकाल रहताहै । ऐसेही जब दक्षिणीय गोलार्धमें सूर्यके रहते उस गोलार्धके देशोंमें पानी बरसताहै तब हमारे उत्तरीय गोलार्धके देशोंमें अधिक शीत होनेके कारण पाला पड़ताहै। इससे यह सिद्ध होगया कि उत्तरीय गोलार्ध और दक्षिणीय गोलार्धमें एक दूसरेके विरुद्ध ऋतु अदलबदलके हुआ करतीहैं। जैसे जब हमारे यहाँ वसन्त, तब दक्षिणीय गोलार्धमें शरद्। फिर जब हमारे यहां ग्रीष्म, तब वहां हेमन्त। जब हमारे यहां वर्षा, तब वहां शिशिर । जब यहां शरद्, तब वहाँ वसन्त । जब यहां हेमन्त, तब वहां ग्रीष्म । जब यहां शिशिर, तब वहां वर्षा । इस प्रकारकी ऋतु विपरीतता दोनों गोलार्धोंके अक्षांशकी तुल्यतापर होती रहती है। इस बातको समझनेके लिये नंबर १० काचित्र देखो जिसमें मुख्य ४ ऋतु दर्साईगई हैं ।

हे पढ़नेहारो ! तुम इस चित्रमें देखते होकि उत्तरीय परमदिनमें अर्थात ग्रीष्म ऋतुमें पृथिवीका उत्तरीय भाग दक्षिणीय भागकी अपेक्षा सूर्यके संनिकट देखा जाताहै । अत एव सूर्यकी किरणें उसपर सीधी लम्बरूपसे अधिक गिरती हैं । इससे ग्रीष्म ऋतुमें तपन विशेष होतीहै । फिर दक्षिणीय परम दिनमें अर्थात् हेमन्तमें हमारा उत्तरीय भाग दक्षिणीय भागकी अपेक्षा दूर होजाताहै । इसीसे उस समय सूर्यकी किरणें हमारे देशपर सीधी नहीं किन्तु तिर्छी लंबरूपसे कम गिरती हैं । अत एव ठंडवढ़जातीहै ॥

इस भांति ऋतुके परिवर्त्तन होनेसे हमें मिष्ट मधुर स्वादिष्ठ ऋतुफल, तथा जीवनमूल अन्न और नरम, नरम, ठंडे, गरम, रंगविरंगे, सूती, ऊनी, वस्त्र आदि पदार्थ जो सुखकी सामग्री रूपहैं; मिला करतेहैं । देखो न कुछ एक छोटीसी बातसे अर्थात् क्रान्तिवृत्तपर पृथिवीको टेढ़ी रखने हीसे उस परमात्माने कैसे बड़ेवड़े काम साधेहैं । क्या यह उसकी अद्भुत बुद्धिके

अनेक कामोंमेंसे एक उदाहरण नहींहै ? फिर इस भांति पृथिवीके रखनेसे ऋतुपरिवर्तन कराके हम जगन्निवासियोंको विविध भांतिसे सुखसंपादन की सामग्रियोंका जो प्रदान कियाहै सो क्या उसकी अपार दया हमपर होनेका पक्का प्रमाण नहीं है ? यदि यही सिद्धहै तो क्या उसकी इस विलक्षण बुद्धि और अपार दयाको सोचसोच हमारा मन उसपर मोहित हो होकर उसकी सिरजी अद्भुत वस्तुओंके वर्णनके द्वारा विशेषकर ऋतु वर्णनके द्वारा उसीकी महिमा प्रगट करनेको वाणीरूप नर्त्तकीको न नचावेगा अवश्यमेव नचावेगा ॥

षडर्तुवर्णनम् ।

आदौवसंतवर्णनम् ।

मत्तगयंद ।

आमकी[1] मौरकै सौरभसे उनमत्त भवैं भँवरे चहुँ ओरा ॥
कानन कोकिल कूकरही सुनिकै मुनिध्यानटरै वरजोरा ॥
देखिवसन्तअनूपछवी नरनारिनके हिय हर्ष न थोरा ॥
आनँदमूल ऋतूसिरज्यो प्रभुतापदपङ्कलगै मन मोरा ॥ १ ॥

ग्रीष्मवर्णनम् ।

ग्रीषमताप सरोवर नीर घटै जिमिपापतै[1] आयु हमारी ॥
झौंसतवेलिवगीचनमांझ यथा प्रभुकोपसे[1] संपति सारी ॥
लागततातबयारकै[1] झोंकन्ह अंगजरैजिमिशोकदवारी ॥
ग्रीषमपापकै ताप सबै मिटिजातद्रवैंजुपयोदमुरारी ॥ २ ॥

वर्षावर्णनम् ।

देखिघटाघनघोर चढ़ी नभमंडल विज्जुछटाछहराई ॥
दादुरमोरकी[1] शोरसुनीपुनि चातककीपिवपीवरटाई ॥
रोदति नारि परी परजंकहिये पियकीविरहाअधिकाई ॥
सोइ वियोग भये जिमिजीव लहै न कहूं सुखकोटिउपाई ॥ ३ ॥

---

१ हेपाठको जहां खड़ी रेखाका चिन्ह देखो; वहां दीर्घको ऐसा पढो जैसा वह; न्हस्वहो । अर्थात् एक मात्रिकलघुहो ।

शरद्वर्णनम् ।

वारिद वारि विहीन असे जस सम्पति छीन भये उपकारी ॥
निर्मल नीर सरोवर सोह यथा चित सन्तनके अविकारी ॥
मारग पंक न देखि परै जिमिन्यायक पंथ सदा सुखकारी ॥
वैद्य हकीमनकी यह पालक बालक पालक ज्यो महतारी ॥ ४ ॥

हेमन्तवर्णनम् ।

आइ हेमन्त बढ़ाई है रात घटाई दियो दिनमान हिं कैसे ॥
पातकहीन सुछीन सुकर्म्मन कीन्ह बली कलिकालहिं जैसे ॥
वस्त्र नहीं जिनके तन ते इहि दारुण शीतसे दुःखित कैसे ॥
शास्त्रके तत्त्व विचारसमै अति सीदत विप्रनिरक्षर जैसे ॥ ५ ॥

शिशिरवर्णनम् ।

दारुण शीत शिशीरके व्यापत लोगन्हके तन थर्थर काँपै ॥
सूरजतापसे जात नहीं कछु होत नहीं पुनि आगिहु तापै ॥
शाल दुशाल न मालकछू शिशिकारि न छूट रजाइहु ढाँपै ॥
दुःसह दुःखनशात तभी जन पीनपयोधरबालिहि चाँपै ॥ ६ ॥

दोहा ।

प्राकृत छबि बहु भांतिसे वर्णत हैं कविवृन्द ॥
ते हि वरन्यो अति अल्पमें विश्वेश्वर मतिमन्द ॥ ७ ॥

इति गौरुतत्पप्रकाशिकायामृतुपरिवर्तननिरूपणोनाम षष्ठ परिच्छेद ।

श्रीः ।

अथ चन्द्राकारनिरूपणोनाम सप्तमः परिच्छेदः ।

धन्य है उस जगदीश्वरको जिसने इस जगत्में अपनी असीम बुद्धि और अचिन्त्य शक्तिसे अनेक पदार्थ ऐसे आश्चर्यपूर्ण सृजे हैं जिन सभों का ठीक ठीक तत्व जानना इस अल्पज्ञ मनुष्यके लिये कठिन ही नहीं वरन असाध्यभी है; तथापि उसीने जो अपार दया करके इस तुच्छ मनुष्य को बुद्धि प्रदान किया है उसीके प्रभावसे इस मनुष्यने उन चमत्कृत पदार्थोंमेंसे कुछेकका तत्व खोज निकाला है। इन चमत्कारपूर्ण अनन्त पदार्थोंमेंसे चन्द्रकलाका घटना बढ़ना अत्यन्त कौतूहलजनक होनेके सिवाय एक मनोहर दृश्यभी है ॥

जिस दिन भगवान् मरीचिमाली तथा कलानिधि एक राशिका आश्रय लेनेसे इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण ठहरते हैं कि " जिस प्रदेशमें एक ही काल दो प्रबल प्रतापी नरेश अपना अपना अधिकार जमाते हैं वह देश तो अवश्यही अन्धेरपूर्ण होगा" उस दिनको अमावास्या अथवा कुहू कहतेहैं। उस दिनकी रात्रि सहस्रोंताराओंसे परिवृत रहनेपरभी केवल निशानाथके न रहनेसे पुत्रपौत्रप्रतिष्ठिता विधवास्त्रीके समान शोभाहीन अत एव हतभागिनीसी प्रतीत होती है। तदनन्तर दोही दिन पीछे भगवान् भूतनाथ देवदेव महादेवजीके शिरोभूषणरूपमें चन्द्रदेव उदित होकर परोपकारार्थ क्षीणवित्त हुए सुजनके समान जगद्वन्द्यताको प्राप्त होते हैं। फिर तो क्रमशः सज्जनकी मैत्रीकी भांति उत्तरोत्तर बढ़कर एक दिन पूर्ण कलासे गगनमंडलमें उदित होते हैं। जिस दिन भगवान् निशापति अपने कोमल करोंसे निशामुखको रंजितकर अपनी प्रियतमाको विरही पुरुषकी भांति सुशोभित करतेहैं उस दिनको पूर्णिमा वा राका कहते हैं। तदनन्तर दुर्ज्जनकी मैत्रीसदृश उत्तरोत्तर चन्द्रकलाका घटना प्रारंभ होताहै ॥

जिन दिनों चन्द्रकलाकी वृद्धि होती है वह शुक्लपक्ष कहाताहै और घटतीके दिनोंको कृष्णपक्ष कहतेहैं। दोनों मिलाके चान्द्रमास कहाजाताहै ॥

इस प्रकार चन्द्रकलाकी वृद्धि तथा क्षय देखकर बाल वृद्ध नर नारी सभोंके हृदयमें इसका कारण जाननेकी प्रबल इच्छा उत्पन्नहोती है पर इसका जानना दाल भात तो नहीं है ॥

यद्यपि हमारे पूर्वाचार्योंने इस विषयको बहुत विशदरूपसे वर्णन किया है परंतु वे सब बातें संस्कृतमें हैं सो प्रथम तो संस्कृत जाननेवालेही इस समय बहुत थोड़े मिलते हैं फिर जो मिलते भी हैं उनमेंसे गोलविद्याके सम्यक् वेत्ता तो अंगुलीसे गिनेजानेयोग्य हैं । बस यही कारणहै कि यहांके बहुतसे लोग इन विषयोंके जाननेसे हृदयमें जो अपूर्व आनन्द होताहै; उससे कोरे रहते हैं। सो उन्हीं पूर्वाचार्योंके कहेहुए कारणको जैसाकि मेरी समझमें आया है मैं संस्कृतका उल्था सरल हिन्दीमें करके तथा स्पष्टताके लिये चित्रको लिखकर इस अभिप्रायसे प्रकाशित करताहूं कि सर्वसाधारणोंमेंसे जो इस विषयके रसिक हैं वे भी इस लेखको पढ़ने तथा चित्र देखनेसे सम्यक् ज्ञान पाकर मेरे समान इस आनन्दके भागी होवें॥

यहांपर पढ़नेहारोंको एक बात समझा देना बहुत अवश्य है वह बात यह है कियदि वे चन्द्रमाका आकार गोल चपटा कमलपत्र सरीखा समझें हों तो यह उनकी भूल है। चन्द्रका आकार गोलतो अवश्य है पर कमलपत्र सरीखा नहीं किन्तु उसकी गोलाई गेंदसी अथवा नारंगीकीसी है ॥

बहुत लोग समझते हैं कि चन्द्रमा अपनेही दीप्तिसे देदीप्यमान है पर यह बात सत्य नहीं है । यदि यह बात ऐसीही होती जैसा कि साधारण लोग समझते हैं तो वे लोग शुक्लपक्षकी द्वितीया तृतीयाको चन्द्रके प्रकाशित भागसे भिन्न भागको जो कालिमासे छिपा रहता है कभी कालिमासे छिपा न देख सकते और न किसीदिन चन्द्रमंडल खंडित प्रकाशमान उनको दिखाई पड़ता वरन सबही दिन पूर्णमण्डल प्रकाशित दृष्ट होता। क्योंकि प्रत्येक गोलवस्तुका अर्द्धभाग हम नीचेसे सदा समूचा देख सकते हैं। हॉ, उसकी गतिके कारण उसके उदय तथा अस्तकालमें अवश्य भेद पडता पर मंडल समूचा ही दृष्ट आता। इन बातोंसे अति स्पष्ट है कि चन्द्रमामें जो ज्योति है सो किसी दूसरी वस्तुकी है। वह कि-

स वस्तुकी है इस विषयमें हमारे पूज्यपाद श्रीभास्कराचार्य्य तथा पंडि त्प्रवर श्रीपतिजी यों लिखते हैं ॥

भा०श्लो०—तरणिकिरणसंगादेष पीयूषपिंडो दिनकर दिशि चन्द्रश्चन्द्रिकाभिश्चकास्ति॥तादितरदिशिबालाकु-न्तलश्यामलश्रीर्घट इव निजमूर्तिच्छाययैवातपस्थः॥१॥

श्री०श्लो०—धाम्ना धामनिधेरयं जलमयो धत्तेसुधादीधितिः सद्यः कृत्तमृणालकन्दविशदच्छायांविवस्वद्दिशि॥ हर्म्ये घर्म्मघृणेः करैर्घट इवान्यस्मिन्विभागे पुनर्बा-लाकुंतलकालतां कलयति स्वच्छां तनोश्छायया ॥२॥

इन दोनों श्लोकोंका तात्पर्य एकही है अर्थात् दोनो आचार्य कहते हैं कि अमृतपिण्डचंन्द्र सूर्यकी किरणके संयोगसे सूर्यकी दिशामें चाँदनीसे चमकता है और उसकी विपरीत दिशामें अपनीही मूर्त्तिकी छायासे युवती के बालोंकी कालिमाकी शोभा धारण करता है । जैसा कि धूपमें रक्खा हुआ घड़ा दिखाई पड़ता है ॥

आचार्यके दिये हुए इस घड़ेके दृष्टान्तपर टुक ध्यान देनेहीसे पाठकोंको स्पष्ट भासित हो जावेगा कि चन्द्रमाका आधा भाग जो कि सूर्यकी ओर रहता है सदा प्रकाशित और दूसरा भाग काला दिखाई पड सकता है ॥

इस प्रकार हम पढ़नेहारोंको इतना निश्चय कराके अब वह बात दर्साते हैं जिससे प्रतिदिन चंद्रमाका आकार बदलता रहता है ॥

पाठकोंको यह बात भली भाँति विदित है कि सूर्य स्थिर और यह पृथिवी जिसपर हम लोग बसते हैं उसकी चहुँ ओर घूमती है और इस पृथिवीकी परिक्रमा चन्द्रमा देता है । सो जिस दिन चन्द्रमा अपनी कक्षामें घूमता हुआ पृथिवी और सूर्यकी सीधमें पहुँचता है अर्थात् पृथिवी और सूर्यके बीचमें हो जाता है उसी दिन अमावास्या होती है, उस दिन चन्द्रकी चमक कुछभी नहीं दीखती क्योंकि चन्द्रमाका वह आधा भाग हमारी दृष्टि

के साम्ने रहता है जो कि प्रकाशित भागसे भिन्न है । सारांश यह कि अमावास्याके दिन चन्द्रका ऊपरी भाग जो कि सूर्यके सन्मुख होनेसे चमकीला रहता है हमारी दृष्टिमें कैसे नहीं आ सकता जैसा कि छतसे लटके हुए काचके गोलेका ऊपरीभाग हमारी दृष्टिमें नहीं आता । फिर चन्द्रमा अपनी कक्षामें घूमता २ लगभग पद्रह दिनमें एक ऐसे स्थानमें पहुँचता है, जहांसे हमको उसका प्रकाशित भाग पूरा दिखाई पड़ता है । क्योंकि उस दिन पृथिवीके एक बाजू सूर्य रहता है और दूसरी बाजू चन्द्रमा । सो पृथिवीसे जो कि दोनोके बीचमें रहती है चन्द्रमाका वह भाग जो सूर्यके सन्मुख रहनेसे उसकी किरण पड़नेसे चमकीला रहता है हम भलीभाति देखसकते हैं । इसी दिन पूर्णिमा होती है । यही बात भास्कराचार्यने लिखी है ॥

श्लोक–सूर्यादधःस्थस्य विधोरधस्थमर्द्धं नृ दृश्यं सकलासितं स्यात्॥दर्शेऽथ भार्द्धान्तरितस्य शुक्लं तत्पौर्णमास्यां परिवर्त्तनेन ॥ १ ॥

अर्थ–सूर्यसे नीचे स्थित चन्द्रका निचला आधा अमावसके दिन मनुष्योंसे सब काला देखे जानेके योग्य है । [इसके पीछे] घूमनेके कारण छः राशिके अन्तरपर होजानेसे वही अर्ध भाग पूर्णिमाके दिन श्वेत मनुष्योसे देखा जाता है ॥

इस प्रकार अमावस और पूर्णिमाके दिन जो चन्द्रका दृश्य होताहै उसे बतलाकर भास्कराचार्य यों लिखते हैं ॥

श्लोक–कक्षाचतुर्थे तरणेर्हि चन्द्रकर्णान्तरे तिर्यगिनो यतोऽब्जात्॥पादोनपक्षाप्लवान्तरेऽतो दलंनृदृश्यस्य दलस्य शुक्लम् ॥ १ ॥

---

१ भास्कराचार्यके इस श्लोकमें जो (तत्) पद आया है जिसका अर्थ हिन्दी अनुवादमें (वही) इति हुआ है सो सूचित करताहै कि चन्द्र अपनी धुरीपर महीनेमें एक बार घूम जाता है । जैसा कि कोई मनुष्य किसीकी परिक्रमा उसाकी ओर मुँह किये किये करे ।

उपचितिमुपयाति शौक्ल्यमिन्दो
स्त्यजत इनं व्रजतश्च मेचकत्वम् ॥

श्लोक–ईपदीपदिह मध्यगमादौ ग्रंथगौरवभयेन मयोक्ता।
वासना मतिमता सकलोह्या गोलबोध इदमेव फलं हि ॥

अर्थ–कक्षाकी चौथाईमें चन्द्रमासे . सूर्य तिर्छा रहताहै । इसलिये भचक्रके पौने छियासी अंशसे चन्द्रके प्रकाशित भागका आधा मनुष्योंको दिखाई पड़ेगा ॥ १ ॥

सूर्यको छोड़ते हुए चन्द्रकी शुक्लता वढ़ती जातीहै, और सूर्यकी ओर जाते हुए चन्द्रकी कालिमा वढ़तीहै ॥ ग्रन्थके वढ़जानेके भयसे मैंने थोड़ा थोड़ा कहा परन्तु बुद्धिमान् लोग इतनेहीसे सब समझ लेवें क्योंकि गोलका वोध होनेका यही फल है ॥

कुशाग्रबुद्धियोंके लिये तो इतनाही वहुतहै । इससे अधिक कहना पीसेको मानो फिर पीसनाहै परंतु कुशाग्रबुद्धि तो संसारमें थोड़े हैं और हम सरीखे स्थूलबुद्धि बहुतहैं । सो उनके उपकारार्थ हम चित्र दिखलाकर कुछ अधिक स्पष्ट किये देतेहैं।जो चित्र दिया जाताहै उसमें हम चन्द्रकी कक्षाका दुहरा न्यास करेंगे । पाठक उससे इसप्रकारके भ्रममें न पड़ें कि चन्द्रकक्षा दुहरीहै । नहीं नहीं चन्द्रकक्षा एकहीहै । पर दुहरी दिखलानेका तात्पर्य मेरा केवल इतनाही है कि पहिली कक्षासे तो चन्द्रका आकार वास्तविक अर्थात् यथार्थ दिखलाऊं, परंतु दूसरीसे जो ऊपरहै चन्द्रमाका वह आकार दर्साऊं जो पृथिवीसे देखा जासकताहै इस चित्रका नम्बर ११है उसे निकालकर देखो॥

हे भाइयो ! इस चित्रमें तुम देखते हो कि जो निचली कक्षावाला चन्द्रमाका आकार (अ) अक्षरसे वोधित किया गया है सो अमावसके दिन का है । उस आकारका उजेला भाग पृथिवीसे कदापि देखा नहीं जा सकता । जैसा कि छतसे लटके हुए कांचके गोलेका ऊपरवाला भाग हमसे देखा नहीं जाता॥अत एव उपरकी कक्षाका आकार सब काला दिखाया गया है और उसके ऊपर जो ३० का तथा १ का अंक लिखा है सो सूचित

करता है कि अमावस तथा शुक्लपक्षकी पड़ीवा तिथि है । इसके दूसरे दिन चन्द्रमा सूर्यकी सीधसे कुछ हटकर पूर्वकी ओर दिखलाई देता है। उसका आकार निचले वृत्तमें (इ) अक्षरसे और ऊपरवाले वृत्तमें २ के अंकसे बोधित है । उसमें तुम देखते हो कि उपरले चित्रमें किंचित् उजेला भाग हँसुआसा दिखाई देने लगा है क्योंकि चन्द्रमा सूर्यसे कुछ तिरछे स्थानमें पहुँच गया है । इस लिये अमावसको जो नहीं देख सकते थे सो कुछ कुछ इस दिन दीखने लगा है। उस दिनको द्वितीया वा दूज कहतेहैं । फिर चन्द्रमा उसके दूसरे दिन सूर्यसे कुछ और पूर्वकी ओर हटजाता है उसका आकार निचले वृत्तमें (उ) अक्षर और उपरले वृत्तमें ३ के अंकसे जो तृतीया वा तीज तिथिका सूचक है दिखाया गयाहै। ऐसेही ४, ५, और ६ आदि अंकोंसे बोधित चित्रोंकोभी समझना चाहिये । इस प्रकार धीरे २ हटता हुआ चन्द्रमा एक दिन ऐसे स्थानपर पहुंचजाता है जहांसे पृथिवीवासियोंको समूचा प्रकाशित दिखाई पड़ता है जो कि १५ के अंकसे दिखलाया गया है वह पूर्णिमाका सूचक है । यहांतक तुम देखते हो कि चन्द्रमा सूर्यको छोड़ता हुआ दूर हटता गया है । ऐसा कि पहिले पृथिवीकी जिस बाजूमें था अब उसके उलटे दूसरी बाजूमें हो गया । अब यहींसे चन्द्रमा सूर्यकी ओर चलने लगा अर्थात् प्रतिदिन कुछ २ हटकर सूर्यके निकट होने लगा इसीसे चंद्रमाका आकारभी शुक्ल पक्षके आकारसदृश होने लगा अर्थात् जो आकार शुक्ल पक्षकी चौदसका है वही कृष्ण पक्षकी पड़ीवाका है और शुक्ल तेरस और कृष्णद्वितीयाका आकार समान है। इसी भांति शुक्लपक्षकी तिथियोंकी उलटी संख्या और कृष्ण पक्षकी तिथियोंकी सीधी संख्याके सब आकार समान हैं ॥

आशा है कि पढ़ने हारे इस लेखको पढ़कर तथा चित्रको देखकर समझ जावेंगे कि चन्द्रके आकारोंका क्या कारण है । यदि किसीको इतने परभी संदेह रहे तो वह मनुष्य रातके समय दीवटपर एक दीपक वा लैंफ बारके रक्खे और उसे सूर्यकी कल्पना करे। फिर उस दीपकमे कुछ हटकर एक ओर बैठजावे और बीचमें एक गेंद वा नारंगी अथवा और कोई गोलवस्तु

रक्खे उसे चन्द्र माने । उस समय वह देखेगा कि उस गोलवस्तुका आधा जो उसकी ओर है सब अंधेरा है और दीपककी ओरवाला आधा भाग उजेला है । इस स्थितिको वह अमावसका चन्द्र समझे । फिर उस गोल वस्तुको कुछ अपने एक हाथकी ओर अर्थात् दहिनी वा बांई बाजू सरकावे तब वह देखेगा कि उस गोलेका उजेला भाग जो पहिले कुछ नहीं दीखताथा अब कुछ २ दीखने लगा है। इस स्थितिको वह शुक्लपक्षकी द्वितीयाका आकार समझे उसी प्रकार वह उस गोलेको जैसे २ अपनी परिक्रमाकी गोलाईमें दीपकसे दूर हटाता जावेगा वैसेही वैसे उजेले भागको अधिक २ देखेगा । फिर यदि वह उस गोलेको अपनी परिक्रमाकी गोलाईके मार्गसे थोड़ा २ उस दीपककी ओर समीप करता जावे तो उस गोलेका अंधेरा भाग उसके सामने आता जावेगा ॥

इस प्रकार वह मनुष्य गोलेका दृश्य देखकर और उसके आकारोंको मनमें रखकर इस लेखको ध्यानसे पढ़े तथा इसमें दिये हुए चित्रपर चित्त लगावे तो तुरंत चन्द्रकलाका घटना बढ़ना उसकी समझमें आजावेगा । उस समय जो उसके हृदयमें अपूर्व आनंदका आविर्भाव होगा वही मेरे इस परिश्रमका फल होगा । शुभमस्तु ॥

इति गोलतत्वप्रकाशिकायां चन्द्राकारनिरूपणोनामसप्तमः परिच्छेदः ।

अथ ग्रहणनिरूपणो नामाष्टमः परिच्छेदः ।

चन्द्राकारनिरूपणनाम पिछलेपरिच्छेदके पढ़नेसे पाठकोंको चन्द्रमाके आकार बदलनेका कारण ठीक ठीक ज्ञात होगया होगा। इसमें कुछ सन्देह नहीं पर उस समझके साथही साथ एक प्रकारकी भूलभी उनके मनमें आगई होगी इसमेंभी कुछ सन्देहनहीं । उस भूलके आजानेमें उनका कुछभी दोष नहीं । दोष हमारे समझानेही का है कि ऐसी रीतिसे उन्हें समझायाहै; पर हम भी लाचार हैं। करें क्या।संसारमें बहुधा ऐसा देखा जाताहै कि सत्यज्ञानकी प्राप्ति असत्यहीके द्वारा होती है । देखो बीजगणितमें नीलक पीतक आदि असत्य वर्णोंके माननेहीसे तुह्मारे सत्य उत्तरकी प्राप्ति होती है । फिर रेखागणितकी

देखो जिसमें रेखाका रूप लंबा तो मानागया है पर उसमें चौड़ाई कुछ भी नहीं मानीगई परंतु बालकोंको इसबातके समझानेके लिये शिक्षक लोग पाटी पर खरिया मट्टीकी एक लंबी रेखा खैंच देते हैं। वह तो सत्य नहीं है। क्योंकि उसमें कुछ तोभी चौड़ाई पाई जाती है। फिर निराकार ईश्वरके ज्ञानकी प्राप्ति भी साकारहीके द्वारा होसकतीहै। यदि निराकारके ज्ञानका चाहनेहारा साकारका आश्रय न लेवे तो वह उस ज्ञानसे वैसा कोरा खट्ट रहजावेगा जैसा बीज गणितके नीलक पीतक वर्णोंको न मानकर तथा शिक्षककी पाटीपर खैंची हुई रेखापर न ध्यान कर विद्यार्थी उनके सच्चे ज्ञानसे कोरा खट्ट रहजाताहै ॥

इसी प्रकार हमनेभी भूलहीके द्वारा अपने प्यारे पाठकोंको सच्चे ज्ञानकी प्राप्ति कराई है पर ज्ञान प्राप्त होजानेके पीछे हमारा कर्त्तव्यहै कि पाठकोंको भूल दर्सादेवें ॥

पाठको ! पिछले परिच्छेद्के पढ़नेसे तुम जानते होगे कि हर अमावस और हर पूर्णिमाको पृथिवी चन्द्रमा तथा सूर्य ये तीनों एक सीधी रेखा पर होजाते हैं जैसा सूतमें तीन दाने पोहकर फ़रक फ़रक रखदिये जावें; परन्तु हम कहते हैं कि हर अमावस वा पूनोंको ऐसा नहीं होता। क्योंकि यह बात तो तब हो सकती जब क्रान्तिवृत्त और चन्द्रकक्षावृत्त समतल पर होते कुछभी ऊंचे नीचे न होते पर ऐसा नहीं है किंतु क्रान्तिवृत्त और चंद्रकक्षावृत्त परस्पर सवा पांच अंशके कोणसे एक दूसरे पर झुके हुए हैं। पाठकोंको चाहिये कि इस बातके समझनेके लिये दो चूड़ी लेवें। एक तो कुछ छोटी होवे और दूसरी कुछ बड़ी होवे। फिर छोटीको बड़ी के गर्भमें डालकर ऐसा रक्खें कि उनके परिधिके घेरे हर कहीं समतल न रहें किन्तु ऊंचे नीचे रहें। अवश्य हीं वे दो स्थानमें समतल होवें पर सर्वत्र न होने पावें। बस पाठक लोग इसी प्रकार क्रान्तिवृत्त और चन्द्रकक्षावृत्तका हाल जानें। जहां वे दोनों समतल होते हैं अर्थात् एक वृत्त दूसरे वृत्तको काटता है उसे क्रान्तिपात कहते हैं। इससे यह सिद्ध होगया कि चन्द्र कक्षावृत्तका आधा भाग तो क्रांतिवृत्तके ऊपर रहता है और आधा क्रांतिवृत्तके नीचे रहता है। इससे पाठकोंको स्पष्ट भासित हो गया कि हर अमावस वा पूनोंको सूर्य श-

न्द्रमा और पृथिवी ये तीनों एक सीधी रेखा पर नहीं होते। क्रांतिवृत्त और चन्द्रकक्षा वृत्तकी ऐसी स्थिति माननेमें यदि कोई प्रमाण पूछे तो उसके लिये यह प्रत्यक्ष प्रमाण होगा कि वह पूर्णिमाके दिन उदित चन्द्रबिम्बपर दृष्टि करे और अच्छी तरहसे ध्यान देकर उसे देखे तो उसे मालूम होगा कि चन्द्रबिम्ब बिलकुल शुद्ध वृत्त अर्थात् गोल नहीं है किंतु उसके प्रकाशित भागमेंसे कुछेक पृथिवीकी ओरसे फिरकर अदृश्य हो रहा है तो सोचना चाहिये कि ऐसा क्यों है ? यह बात क्रांति वृत्तसे चन्द्रकक्षावृत्तके बिन ऊंचे नीचे भये नहीं हो सकती॥

फिर यह भी नहीं है कि ये तीनों अर्थात् सूर्य चन्द्रमा और पृथिवी कभी सीधी रेखामें नहीं आते हों कभी कभी अर्थात् उस स्थानपर आनेसे जहां क्रांतिवृत्त और चन्द्रकक्षावृत्तका क्रांतिपात होता है ये तीनों एक सीधी रेखामें हो जाते हैं। जिस समय ये सीधी रेखामें पाये जाते हैं उस समय एक बड़ाही अद्भुत चरित्र होता है उसे ग्रहण कहते हैं॥

ग्रहणके विषयमें नाना देशोंमें नाना जातिके लोगोंमें नाना प्रकारके विचारहैं कहीं तो साधारण लोग यह मानते हैं कि मंडलमें सांप लिपटजाते हैं जिस्से मंडल काला होजाता है। फिर कहीं समझते हैं कि कोई दैत्य आकर सूर्य और चन्द्रको निगल लेता फिर पीछे उगल देता है। कहीं लोग समझते हैं कि चांडाल आकर उन पर अपनी परछांही डालताहै। कहांतक कहें कहीं कुछ मानते और कहीं कुछ। लेकिन हर कहींके गोल तत्ववेत्तालोग ग्रहणका कारण एकही मानतेहैं। गीतामें श्रीकृष्ण भगवान्ने बहुत ठीक कहाहै। यथा—

श्लोक—व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन॥
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्॥१॥

अर्थ—कृष्ण भगवान् अर्जुनसे कहतेहैं कि हे अर्जुन ! निश्चयात्मिका बुद्धि एकही है। उसमें विभेद नहीं होसकता पर अनिश्चयवालोंकी बुद्धि बहुत शाखा प्रशाखावाली अनन्त हैं। इति॥

अब इस बातके विचारनेका अवसर प्राप्त भया है कि ग्रहण है क्या वस्तु और क्योंकर होता है ?

यदि हम साधारण लोगोंकी बात माननेको तैयार होते हैं कि कोई दैत्य-विशेष अथवा ऊपर कही हुई वस्तु ओंमेंसे कोई भी वस्तु है जो आकर सूर्य और चन्द्रमाको इस भांति कांतिहीन करदेती है तो चित्तको प्रथम तो यही शंका आकुल करती है कि अमावस और पूर्णिमाको छोड़ और दिनमें ग्रहण क्यों नहीं लगता खास बंधे दिनहीमें क्यों लगता है। फिर हर अमावस और हर पूनोंको क्यों नहीं लगता किसी किसी अमावस और पूनोंहीमें क्यों लगताहै ? इन बातोंका कुछ समाधान नहीं मिलता। भला हम इस शंकाका उत्तर कुछ न पाकर यही मानलेवें कि किसी दैत्यकी सूर्य और चन्द्रमासे शत्रुता है सो वह वैरको स्मरण करतेही उछलकर अपनी इच्छानुसार अमावास और पूर्णिमाहीको आ ग्रसता है। तब हमें दूसरी शंका यह घेरती है कि सूर्य और चन्द्रमाके ग्रहणमें लक्ष्य करनेसे जो भिन्नता लखी जातीहै सो क्यों कर होती है। उनका ग्रसनेहारा तो एक ही है सो उन दोनोंके ग्रहणोंमेंभी एकता देखी जानी चाहिये परन्तु ऐसा न होकर बात बातमें भिन्नता दिखाई पड़ती है। जैसा जब चन्द्रग्रहण होता है तब ग्रसनेहारेका रूप बड़ा जान पड़ता है पर सूर्यग्रहणमें उसका रूप छोटा दिखाई पड़ता है। इस बातका प्रमाण चाहो तो ग्रहणके समय प्रत्यक्ष देख लो कि जब चन्द्रमा आधा ग्रसा जाचुकता है उस समय चन्द्रमाके शृंग कुंठित देख पड़ते है अर्थात् पैने नहीं होते लेकिन् जब सूर्य आधा ग्रसा जाता है तब उसके शृंगोंमें तीक्ष्णता रहती है। यह भेद क्या ग्रसनेहारेकी विना भिन्नता हो सकती है ! फिर दूसरी भिन्नता यह है कि चन्द्रग्रहण तो देर देर तक ठहरता है पर सूर्यग्रहण उसकी अपेक्षा कम ठहरता है। फिर और भी भिन्नता है। सूर्यग्रहण सदा पश्चिमसे लगा करता है और पूर्वकी ओरसे मुक्त होता है परन्तु चन्द्रग्रहण इसके बिल्कुल विपरीत होताहै अर्थात् पूर्वकी ओरसे तो स्पर्श और पश्चिमसे मोक्ष होता है। इतनाही नहीं किंतु और भी भेद हैं। जैसा सूर्यग्रहण एकही समयमें कहीं तो सर्व-

दीपकके सामने यदि कोई वस्तु रख देवें तो उस वस्तुके पिछले भागके अंधेरे होनेके सिवा वह वस्तुभी अंधेरी दीखेगी जो उसकी छायामें होवेगी । बस येही कारण सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण होनेके हैं ॥

हर अमावस और हर पूनोंको ग्रहण इसलिये नहीं पड़ता कि यद्यपि अमावसके दिन चंद्रमा, सूर्य और पृथिवीके बीचमें आजाता वैसेही पूनोंके दिन यह पृथिवी, सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें होजाती है परंतु ठीक एक सीधी रेखामें वे तीनों अर्थात् चन्द्रमा सूर्य और पृथिवी नहीं होते किन्तु चन्द्रमा ठीक सीधी रेखासे कि तो कुछ ऊपर रहता है या नीचे रहता है। यह बात हम तुम्हें इसी परिच्छेदमें पहिले बतला चुके हैं । सो जिस अमावस वा पूनोंको ये तीनों सीधी एकही रेखामें होजावेंगे अर्थात् चन्द्रमा क्रांतिपातमें आजावेगा उसी अमावस वा पूनोंको यथा क्रम सूर्यग्रहण वा चन्द्रग्रहण होगा । उसमेंभी यह विशेषता है कि पृथिवीके जिस प्रदेशसे अमावसके दिन सूर्य चन्द्रमा और पृथिवीकी एकसूत्रता पाई जाती होगी उसी प्रदेशमें सूर्यग्रहण सर्वलीन वा कंकणाकृति होगा और देशोंमेंसे जो देश उस सूत्रके निकट होंगे उनमें सूर्यका खंडग्रास होगा बाकी देशोंमें ग्रहण कुछभी न होगा परन्तु जिस पूनोंको चन्द्रमा जहांसे सीधी रेखामें होगा उस देशभरमें चन्द्रमाका सर्वग्रास दीखेगा सूर्यग्रहणकी नाई नहोगा कि कहीं खंडग्रास और कहीं सर्वग्रास होवे । हां चन्द्रमाकाभी खंडग्रास होता है पर उसका कारण चन्द्रमाका ठीक २ क्रांतिपातपर न होना ही है । सूर्यग्रहणमें जो चन्द्रमाके ठीकठीक क्रांतिपातपर रहतेभी कहीं कहींसे खंडग्रास दीखता है इसका कारण केवल सूर्यबिम्बके व्यासकी बड़ाई और छादक चंद्रबिम्बके व्यासकी छोटाई ही है । वह कारण चंद्रमाके छादक भूभाबिंबमें नहीं है । भूभाबिम्ब चन्द्रमासे सदा बड़ा होता है । अस्तु इतनी बातके स्थिर होजानेसे ग्रहणके चरित्र पाठकोंके चित्तमें आजावेंगे । इसके आगे हम अपने पाठकोंको समझनेके लिये सूर्यग्रहणमें से प्रथम सर्वलीन ग्रहणका चित्र देते हैं उसका नम्बर १२ है पाठक निकालकर देखलें ॥

लीन कहीं खंडग्रस्त और कहीं कुछभी नहीं होता पर चन्द्रग्रहण ऐसा नहीं किन्तु जब चन्द्रका सर्वग्रहण होता है तब देशभरमें सर्वग्रहण होता है। फिर ग्रहणोंके समयमें भी भेद पड़ा करता है। कहीं तो कुछ काल पहिले लगता और कहीं पीछे लगा करता है। इन भेदोंको अर्थात् दिशा-भेद, देशभेद, कालभेद, स्थितिभेद, आवरणभेद, देखकर हम कैसे मानलें कि सूर्य चन्द्रका ग्रसनेहारा कोई एक दैत्य है। यदि एक होता तो उसकी सब बातें एकसी होतीं। पूर्वोक्त बातोंके एक न होनेसे हरएक जन जिसके कुछभी बुद्धि होगी यह मान लेगा कि सूर्य चन्द्रमाके ग्रहण पड़नेका कारण दैत्य नहीं किंतु कोई और ही वस्तु है॥

हे प्रिय पाठको! वह वस्तु क्या है? इसी बातको आज हम तुम्हें अपने यहांके जगद्वंदनीय कमनीयकीर्ति सूक्ष्मदर्शी महर्षियोंके कथनानुसार सरल हिंदीमें कहकर समझाते हैं॥

सूर्यग्रहणका हेतु चन्द्रमा होता है और चन्द्रग्रहणका हेतु तुम्हारी इस पृथिवीकी पृथु छाया ठहरती है। जैसा सूर्य सिद्धान्तमें, लिखा है। यथा-

श्लोक–छादको भास्करस्येन्दुरधःस्थो घनवद्भवेत्।
भूच्छायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्य भवेदसौ॥ १॥

अर्थ–सूर्यका छादक अर्थात् ढांपनेहारा नीचे रहनेहारा चन्द्रमा बदलके समान होताहै और पृथिवीकी छायामें चन्द्रमा जो पूर्वमुख पैठता है इससे चन्द्रकी छादक वह छाया होती है॥

तात्पर्य यह है कि अमावसके दिन चन्द्रमा, सूर्य और पृथिवीके बीचमें आजाता है। यह बात तुम चन्द्राकारनिरूपण परिच्छेदके पढ़नेसे भली भांति जान चुकेहो सो जैसा बीचमें बद्दलके आजानेसे सूर्य नहीं दीखता वैसेही चंद्रमाके आजानेसे हमारी आंखोंको सूर्य नहीं दीखता है इसी तरह पूर्णिमाके दिन पृथिवीकी एक बाजू चन्द्रमाके होनेसे तथा दूसरी बाजू सूर्यके रहनेसे इस पृथिवीकी छाया चन्द्रमापर पड़जाती है जिससे उस चन्द्रका प्रकाशित भाग हमारी दृष्टिको काला दीखता है। जैसा हम

दीपकके साम्ने यदि कोई वस्तु रख देवें तो उस वस्तुके पिछले भागके अंधेरे होनेके सिवा वह वस्तुभी अंधेरी दीखेगी जो उसकी छायामें होवेगी । वस येही कारण सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण होनेके हैं ॥

हर अमावस और हर पूर्नोको ग्रहण इसलिये नहीं पड़ता कि यद्यपि अमावसके दिन चंद्रमा, सूर्य और पृथिवीके बीचमें आजाता वैसेही पूर्नोके दिन यह पृथिवी, सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें होजाती है परंतु ठीक एक सीधी रेखामें वे तीनों अर्थात् चन्द्रमा सूर्य और पृथिवी नहीं होते किन्तु चन्द्रमा ठीक सीधी रेखासे कि तो कुछ ऊपर रहता है या नीचे रहता है । यह बात हम तुम्हें इसी परिच्छेदमें पहिले बतला चुके हैं । सो जिस अमावस वा पूर्नोको ये तीनों सीधी एकही रेखामें होजावेंगे अर्थात् चन्द्रमा क्रांतिपातमें आजावेगा उसी अमावस वा पूर्नोको यथा क्रम सूर्यग्रहण वा चन्द्रग्रहण होगा । उसमेंभी यह विशेषता है कि पृथिवीके जिस प्रदेशसे अमावसके दिन सूर्य चन्द्रमा और पृथिवीकी एकसूत्रता पाई जाती होगी उसी प्रदेशमें सूर्यग्रहण सर्वलीन वा कंकणाकृति होगा और देशोंमेंस जो देश उस सूत्रके निकट होंगे उनमें सूर्यका खंडग्रास होगा बाकी देशोंमें ग्रहण कुछभी न होगा परन्तु जिस पूर्नोको चन्द्रमा जहांसे सीधी रेखामें होगा उस देशभरमें चन्द्रमाका सर्वग्रास दीखेगा सूर्यग्रहणकी नाई नहोगा कि कहीं खंडग्रास और कहीं सर्वग्रास होवे । हां चन्द्रमाकाभी खंडग्रास हाता है पर उसका कारण चन्द्रमाका ठीक २ क्रांतिपातपर न होना ही है । सूर्यग्रहणमें जो चन्द्रमाके ठीकठीक क्रांतिपातपर रहतेभी कहीं कहींसे खंडग्रास दीखता है इसका कारण केवल सूर्यबिम्बके व्यासकी बड़ाई और छादक चंद्रबिम्बके व्यासकी छोटाई ही है । वह कारण चद्रमाके छादक भूभाबिंबमें नहीं है । भूभाबिम्ब चन्द्रमासे सदा बड़ा होता है । अस्तु इतनी बातके स्थिर होजानेसे ग्रहणके चरित्र पाठकोंके चित्तमें आजावेंगे । इसके आगे हम अपने पाठकोंको समझनेके लिये सूर्यग्रहणमें से प्रथम सर्वलीन ग्रहणका चित्र देते हैं उसका नम्बर १२ है पाठक निकालकर देखलें ॥

हे पढ़नेहारो ? इस दियेहुए सूर्यके सर्वलीन ग्रहणके चित्रमें तुम देखतेहो कि (सू) तो सूर्य है, और (पृ) पृथिवीहै, जो क्रांतिवृत्तपर चलती हुई सूर्यकी परिक्रमा देतीहै और (चं) क्रान्तिपातपर स्थित चन्द्रमाहै और पृथिवीकी चहुंओर जो एक वृत्तहै वह तो चन्द्रकक्षाका बोधक वृत्तहै । अब जो सूर्यसे तेजपुंज निकलताहै सो यदि बीचमें चन्द्रमा न आजाता तो पृथिवीके आधे पृष्ठको पूरापूरा प्रकाशित करता पर चन्द्रमाके बीचमें आजानेसे उसकी प्रभाके आनेमें रोकावट होगई उस रोकावटसे पृथिवीके पृष्ठका कुछेक हिस्सा अंधकारसे आच्छादित होगयाहै । उस अंधेरेमेंभी दो भेदहैं । एकतो बहुत कालाहै दूसरा कम कालाहै । जो बहुत कालाहै सो मुख्यच्छायाहै और जो कम कालाहै सो गौणच्छायाहै । इन भेदोंके होनेका कारण सूर्य मंडलकी बड़ाई तथा चन्द्रमंडलकी छोटाई ही है । मुख्य छाया वहां पड़तीहै जहां सूर्यकी प्रभा आ ही नहीं सकती और गौणच्छाया वहांहोतीहै; जहां सूर्य की प्रभा कुछ कुछ आतीहै । यदि सूर्य चमकीला एक बिन्दुमात्र होता तो यह भेद न होता सूर्यका व्यासतो बहुत बड़ाहै और चन्द्रमाका व्यास पृथिवीके व्याससेभी छोटाहै । सो जहांपर मुख्य छाया पड़तीहै उस स्थानपर सूर्यका सर्व ग्रास होगा । जैसाकि अबसे पांच या छः वर्ष पहिले बक्सरमें सूर्यका सर्वलीन ग्रहण हुआथा परंतु जिसदेशमें गौण छाया पड़तीहै वहां सूर्यका ग्रहण तो होगा पर सर्वग्रास नहीं किन्तु खंडग्रास होगा । इसीसे चित्रमें (क) अक्षरका स्थान सर्वग्रासका दिखलाया गयाहै और (क) अक्षरके लिखनेका तात्पर्य काले अर्थात् पूर्णअंधकारसे है । पर उसकी दोनों बाजूमें अर्थात् गौणच्छायाके देशमें (खं) अक्षर लिखाहै जिसका तात्पर्य खंडग्राससे है । गौणच्छायासे परे जो देशहैं उनमें ग्रहण नहीं होगा । क्योंकि वहांके वासियोंको सूर्यमंडल समूचा दीखता रहेगा इसीलिये वहां (अ) अक्षर लिखा गयाहै । तात्पर्य तो अग्रहणके देशसेहै ॥

इस प्रकार हम अपने पाठकोंको सूर्यग्रहणके सर्वलीन वा सर्वग्रास होनेका भेद समझाकर अब सूर्यग्रहणके कंकणाकृति होनेका भेद बतलानेके लिये

प्रथम उसका चित्र देतेहैं उसका नम्बर १३ है पाठकोंको निकालकर देखना चाहिये ॥

हे पाठको ! कंकणाकृति सूर्यग्रहणसूचक चित्र सब बातोंमें पूर्व चित्रके समान ही है । केवल इतना भेद है कि चंद्रमाकी जो मुख्य छाया है सो पहिले चित्रमें तो पृथिवीके कुछेक देशमें भी व्यापती है पर इस दूसरे चित्रमें वह मुख्यच्छाया पृथिवीको स्पर्श करनेसे पहिलेही सूईके नोंकके स्वरूपमें समाप्त होजाती है। सो जब इस आकृतिकी चंद्रमाकी मुख्यच्छाया होतीहै । तब सूर्यग्रहण उस प्रदेशमें जिसके ऊपर वह छाया समाप्त होती है कंकणाकृति होता है । अर्थात् सूर्यमंडलकी चमकीली चहुँकोर कंकणके रूपमें चमकती रहती है ॥

सूर्यके ग्रहणके इन दो भेदोंके होनेका कारण क्रांतिवृत्त और चन्द्र कक्षावृत्तका शुद्ध २ वृत्त न होना ही है । पाठकोंको अबतक जो वृत्त देखनेके लिये चित्रमें दिये गये हैं सो सब शुद्ध वृत्तके रूपमें दिये गये हैं पर पाठकलोग इस बातको निश्चय जान रक्खें कि जितने वृत्त ग्रहोंकी कक्षाके हैं सो सबके सब शुद्ध गोलरूप नहीं किंतु गोलप्राय हैं । इस लिये उन्हें वृत्त न कहकर प्रायवृत्त कहना बहुत उचित है क्योंकि उनकी गोलाई ऐसी है जैसा कोई दो धनुष लेकर उन दोनोंकी टोंकसे टोंक जोड़ देवे । इसीसे तो हमारे यहांके सिद्धांतग्रंथोंमें चापसाधन किया है । चाप तो धनुष ही है । अब पाठकलोग स्वयं विचार करसकते हैं कि दो धनुषके मिलादेनेसे जो गोलाई उत्पन्न होगी सो कभी शुद्ध गोलरूपमें न होगी किंतु ऐसी गोलाई होगी जैसी अंडेकी गोलाई दोनों सिरोंकी ओरसे देखनेमें आती है । फिर पाठकलोग दो धनुषोंकी पूर्वोक्तरीतिसे गोलाई बनाके उसके बीचमें एक ज्योतिपुंज रक्खें और किसी वस्तुको उस गोलाईकी परिधिपर घुमावें । ऐसा करनेमें वे देखेंगे कि कहीं तो वह वस्तु ज्योतिपुंजसे निकट होजाती है और कहीं दूर । ठीक ऐसाही हाल कक्षावृत्तमें घूमते हुए ग्रहगोलोंका भी जानें । इसी दूरता और समीपताके कारण सूर्य ग्रहणके भी दो भेद अर्थात् सर्वलीन और कंकणाकृति हो जाते हैं ॥

जब चन्द्रमा अपनी कक्षामें पृथिवीसे अधिक दूर होवे और पृथिवी सूर्यसे अधिक निकट होवे तब सूर्यग्रहण कंकणाकृति होगा । परंतु जब चन्द्रमा अपनी कक्षामें पृथिवीसे अधिक निकट होवे और पृथिवी क्रांति वृत्तमें सूर्यसे अधिक दूर होवे तब सूर्यग्रहण सर्वलीन होगा ॥

यह तो हुआ सूर्यग्रहणके सर्वलीन वा कंकणाकृति होनेके कारणका वर्णन अब रहा सूर्यग्रहणके खंडग्रासका वर्णन । पाठको ! सूर्यके खंड ग्रास दीखनेके दो कारण हैं । एक तो क्रांतिपातपर स्थित चन्द्रके ठीक बीचो बीचमे रहनेपर भी उस चन्द्रबिंबके लघु व्यास होनेसे जो गौण छायाके देशोंमें देखा जाता है सो है जिसका वर्णन हम सर्वलीन ग्रहणके वर्णनप्रसंगमें अपने पाठकोंको सुना भी चुके हैं और दूसरा हेतु क्रांतिपात में ठीक सीधी रेखामें चन्द्रका न होनाहै अर्थात् सीधीरेखासे कुछ हटकर चन्द्रका ऊंचा नीचा होनाहै । इस कारणसे भी सूर्यग्रहण कहीं तो होताहै और कहीं नहीं होता । इतिसूर्यग्रहणम् ॥

अथ चन्द्रग्रहणम् ।

जैसा सूर्यकी प्रभाके पृथिवीपर आनेमें रोकावट होजानेसे सूर्यग्रहण कहा जाताहै वैसाही पूर्णमाके दिन जब कि हमें सूर्यकी प्रभासे प्रकाशित पूर्णचन्द्र-बिम्ब दीखताहै हमारी पृथिवीके ठीक बीचमें आजानेसे चन्द्रपर सूर्यकी प्रभाके जानेमें रोकावट होजातीहै उसे चन्द्रग्रहण कहतेहैं । दोनों ग्रहणोंका कारण सूर्यकी प्रभाके आनेकी रोकावटहीहै चन्द्रग्रहणका चित्र नंबर १४ का दिया गयाहै । उसमें देखनेसे तुम्हे ज्ञात होजावेगा कि सब बातें तो पहिलीहीसी हैं भेद केवल इतनाही है कि चन्द्रमा पृथिवीकी दूसरी बाजूमें आजानेसे पृथिवीकी मुख्य

१ यद्यपि इन दोनों परिभाषाओंमें पृथिवीकी निकटता और दूरताका कारण कंकणाकृति और सर्वलीन ग्रहणके विषय लिखा गया है तथापि पाठकोंको समझना चाहिये कि कंकणाकृति और सर्वलीन ग्रहण होनेमें चन्द्रमाहीकी दूरता वा निकटता मुख्य कारण है पृथिवीका कारण बहुत उपयोगी नहीं । हां कुछ कुछ होता है इससे परिभाषामें लिखना अवश्य है ॥

मोटी छायामें पड़गयाहै इस लिये दिखाई नहीं पड़ता। जैसाकि हम दीपक वारके रक्खें और उसकी एक ओर कोई गेंद रखदेवें फिर उस गेंदकी परछाईमें एक गोली रखदेवें तब क्या होगाकि वह गोली उसी छायामें छुपजावेगी। ठीक ऐसाही कारण चन्द्रग्रहणकाहै ॥

अब जो सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणकी स्थितिमें पाठकोंको भेद दीखताहै अर्थात् सूर्यग्रहण थोड़े समयतक रहता और चन्द्रग्रहण देरतक रहता है उसका कारण तो पाठक सहजही समझसकतेहैं कि सूर्यका छादक जो चन्द्रमाहै सो बहुत छोटा है परन्तु चन्द्रमाकी छादक जो भूछायाहै सो बहुत मोटीहै उसे पार करनेमें चंद्रमाको अवश्यही विलम्ब लगेगा। फिर जो सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणके स्पर्श तथा मोक्षकी दिशामें भिन्नता आतीहै उसका कारण भी बहुत सरलहै। क्योंकि चन्द्रमा पूर्वकी ओर चलताहुआ सूर्यको पीछेसे आकर ढांपताहै । फिर उसी चालसे चलता हुआ पूर्वकी ओरसे निकल जाताहै। इसीसे सूर्यग्रहणमें पश्चिमसे तो स्पर्श होताहै और पूर्वसे मोक्ष होताहै परन्तु चन्द्रग्रहणमें चन्द्रमा पूर्वको चलता हुआ पृथिवीकी छायामें आपही घुसताहै सो पहिले उसका पूर्वी भाग उसमें घुसेहीगा । इस कारण चन्द्रग्रहणमें पूर्व तो स्पर्श होगा फिर उसी चालसे जो उसमेंसे निकलजावेगा इससे पश्चिम मोक्ष होना तो अर्थतः सिद्धहै ॥

चन्द्रका खंडग्रास तथा एकदेशी ग्रहण होनेका कारण पूर्व कहे हुएके समान है उसमें कुछभी भेद नहीं ॥

ये बातें सिद्धान्तग्रंथोंमें बहुत विशदरूपसे वर्णित हैं । ग्रहणके समय जाननेकी बात तथा कब कितने बिश्वा पड़ेगा यह बातें गणितसे जानी जाती हैं। इस लिये उन्हें यहां नहीं लिखा। क्योंकि गणितमें हरएकका अधिकार नहीं होता सो गणित लिखनेसे ग्रंथ काठिन्य होनेके सिवाय और कुछ लाभ नहीं। यह बात मुझे इष्ट नहीं है कि चाहे कोई समझे वा न समझे मैं अपनी पंडिताई बघारेंजाऊं । मुझे तो यह इष्ट है कि जो मूल बातें हैं उन्हें सब लोग जान लेवें। पंडितलोग तो सभी जानते हैं ॥

जब चन्द्रमा अपनी कक्षामें पृथिवीसे अधिक दूर होवे और पृथिवी सूर्यसे अधिक निकट होवे तब सूर्यग्रहण कंकणाकृति होगा। परंतु जब चन्द्रमा अपनी कक्षामें पृथिवीसे अधिक निकट होवे और पृथिवी क्रांति वृत्तमें सूर्यसे अधिक दूर होवे तब सूर्यग्रहण सर्वलीन होगा॥

यह तो हुआ सूर्यग्रहणके सर्वलीन वा कंकणाकृति होनेके कारणका वर्णन अब रहा सूर्यग्रहणके खंडग्रासका वर्णन। पाठको! सूर्यके खंड ग्रास दीखनेके दो कारण हैं। एक तो क्रांतिपातपर स्थित चन्द्रके ठीक बीचो बीचमे रहनेपर भी उस चन्द्रबिंबके लघु व्यास होनेसे जो गौण छायाके देशोंमें देखा जाता है सो है जिसका वर्णन हम सर्वलीन ग्रहणके वर्णनप्रसंगमें अपने पाठकोंको सुना भी चुके हैं और दूसरा हेतु क्रांतिपात में ठीक सीधी रेखामें चन्द्रका न होनाहै अर्थात् सीधीरेखासे कुछ हटकर चन्द्रका ऊंचा नीचा होनाहै। इस कारणसे भी सूर्यग्रहण कहीं तो होताहै और कहीं नहीं होता। इतिसूर्यग्रहणम्॥

अथ चन्द्रग्रहणम्।

जैसा सूर्यकी प्रभाके पृथिवीपर आनेमें रोकावट होजानेसे सूर्यग्रहण कहा जाताहै वैसाही पूर्णिमाके दिन जब कि हमें सूर्यकी प्रभासे प्रकाशित पूर्णचन्द्र-बिम्ब दीखताहै हमारी पृथिवीके ठीक बीचमें आजानेसे चन्द्रपर सूर्यकी प्रभाके जानेमें रोकावट होजातीहै उसे चन्द्रग्रहण कहतेहैं। दोनों ग्रहणोंका कारण सूर्यकी प्रभाके आनेकी रोकावटहीहै चन्द्रग्रहणका चित्र नंबर १४ का दिया गयाहै। उसमें देखनेसे तुम्हें ज्ञात होजावेगा कि सब बातें तो पहिलीहीसी हैं भेद केवल इतनाही है कि चन्द्रमा पृथिवीकी दूसरी बाजूमें आजानेसे पृथिवीकी मुख्य

१ यद्यपि इन दोनों परिभाषाओंमें पृथिवीकी निकटता और दूरताका कारण कंकणाकृति और सर्वलीन ग्रहणके विषय लिखा गया है तथापि पाठकोंको समझना चाहिये कि कंकणाकृति और सर्वलीन ग्रहण होनेमें चन्द्रमाहीकी दूरता वा निकटता मुख्य कारण है पृथिवीका कारण बहुत उपयोगी नहीं। हां कुछ कुछ होता है इससे परिभाषामें लिखना अवश्य है॥

मोटी छायामें पड़गयाहै इस लिये दिखाई नहीं पड़ता । जैसाकि हम दीपक बारके रक्खें और उसकी एक ओर कोई गेंद रखदेवें फिर उस गेंद-की परछाईमें एक गोली रखदेवें तब क्या होगाकि वह गोली उसी छायामें छुपजावेगी । ठीक ऐसाही कारण चन्द्रग्रहणकाहै ॥

अब जो सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणकी स्थितिमें पाठकोंको भेद दीखताहै अर्थात् सूर्यग्रहण थोड़े समयतक रहता और चन्द्रग्रहण देरतक रहता है उसका कारण तो पाठक सहजही समझसकतेहैं कि सूर्यका छादक जो चन्द्रमाहै सो बहुत छोटा है परन्तु चन्द्रमाका छादक जो भूछायाहै सो बहुत मोटीहै उसे पार करनेमें चंद्रमाको अवश्यही बिलम्ब लगेगा। फिर जो सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणके स्पर्श तथा मोक्षकी दिशामें भिन्नता आतीहै उसका कारण भी बहुत सरलहै । क्योंकि चन्द्रमा पूर्वकी ओर चलताहुआ सूर्यको पीछेसे आकर ढांपताहै । फिर उसी चालसे चलता हुआ पूर्वकी ओरसे निकल जाताहै । इसीसे सूर्यग्रहणमें पश्चिमसे तो स्पर्श होताहै और पूर्वसे मोक्ष होताहै परन्तु चन्द्रग्रहणमे चन्द्रमा पूर्वको चलता हुआ पृथिवीकी छायामें आपही घुसताहै सो पहिले उसका पूर्वी भाग उसमें घुसेहीगा । इस कारण चन्द्रग्रहणमें पूर्व तो स्पर्श होगा फिर उसी चालसे जो उसमेंसे निक-लजावेगा इससे पश्चिम मोक्ष होना तो अर्थतः सिद्धहै ॥

चन्द्रका खंडग्रास तथा एकदेशी ग्रहण होनेका कारण पूर्व कहे हुएके समान है उसमें कुछभी भेद नहीं ॥

ये बातें सिद्धान्तग्रंथोंमें बहुत विशदरूपसे वर्णित हैं । ग्रहणके समय जाननेकी बात तथा कब कितने बिश्वा पड़ेगा यह बातें गणितसे जानी जाती हैं । इस लिये उन्हें यहां नहीं लिखा । क्योंकि गणितमें हरएकका अधिकार नहीं होता सो गणित लिखनेसे ग्रंथ काठिन्य होनेके सिवाय और कुछ लाभ नहीं । यह बात मुझे इष्ट नहीं है कि चाहे कोई समझे वा न समझे मैं अपनी पंडिताई बघारेजाऊं । मुझे तो यह इष्ट है कि जो मूल बातें हैं उन्हें सब लोग जान लेवें । पंडितलोग तो सभी जानते हैं ॥

सूर्य सम प्रखर प्रभाशाली व्यासजीसे जो विमुख हैं और उनके शशि सम उज्वल यशको जो मिथ्या वादित्वकी छायामें ग्रस्त देखा करते हैं वे इस परिच्छेदको पढ़कर कह उठेंगे कि पंडितजीने तो खूबही पुराणमतका खंडन किया है। यदि वे लोग ऐसा समझें तो उनकी भारी भूल है। क्योंकि जिस व्यासजीकी कवितारूपी सरिताके भँवरमें पड़कर संसारके बड़े बड़े बुद्धिसामर्थ्य सम्पन्न डूबते, उतराते, गोतेखाते, वहगये उसके पार पाने अर्थात् लांघनेकी मुझ तुच्छ जड़जीवमें सामर्थ्य कहां। इस बातके उदाहरणके लिये मैं बहुत न कहकर उनकी रची पुस्तकोंमेंसे केवल एक छोटीसी पोथी गीता ही का नाम लेता हूं। जिसके ऊपर लगभग बावन टीकाएं पाई जाती हैं और विदेशियोंकी भाषाओंमें जो उल्था हुआ है सो अलग। फिर जब हम उन टीकाओंको देखते हैं तो एक दूसरेसे कहीं कहीं भिन्न होनेपरभी सभी वैसी सत्यसी प्रतीत होती हैं जैसा किसी एक स्थानपर खड़े हुए पंडित, मौलवी, पहलवान, और कूँजड़ेने किसी पक्षिविशेष की बोली सुनकर अपनी २ भावनानुसार ऐसे ऐसे अर्थ लगाये थे अर्थात् पंडितजीने सुनकर कहा अहा पक्षी क्याही मधुरी बोलीसे बोलताहै कि "सीताराम दशरथ सीताराम दशरथ"। मौलवीसाहबने फरमाया कि पंडितजी आप भूलते हैं वह तो बोलता है कि "खुदा तेरी कुदरत खुदा तेरी कुदरत"। दोनोंकी बात काटकर पहलवानने बयान किया कि तुम दोनों नहीं समझे। यह तो कहता है कि "डंड मुग्दर कसरत डंड मुग्दर कसरत"। इन तीनोंकी बात सुनकर और कुछ अनखाकर तेजीसे कूँजडे साहब कहने लगे कि तुम सब तो होगये हो पागल। यह न तो कहता है "सीताराम दशरथ" और न कहता है "खुदा तेरी कुदरत और न यही कि "डंड मुग्दर कसरत" बलिक यह तो कहता है कि "लहसन पियाज अदरख लहसन पियाज अदरख"॥

अब इन चारोंकी बात सुनकर कौन किसे झूठा वा सच्चा ठहरासकता है?। ऐसेही व्यासजीके कहेहुए वचनके अर्थ लगानेमें अपने २ अभिप्रायके अनुसार पंडितोंने वर्णन किया है उनमेंसे किसे सच्चा कहें और किसे झूठा

जब व्यासजीके कवितारूपी सरिताका ऐसा अद्भुत प्रवाह है कि बड़े बड़े पंडित अपनी सामर्थ्य भर पैर पैर कर पार नहीं पाते तो मुझ मन्दबुद्धिकी क्या गणना । "जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं, कहो तूल केहि लेखे माहीं"। सच तो यह है कि मेरेलिये यह बड़े आनन्दकी बात हुई कि इस वसुधा तलपर एक ऐसी सुधातरंगिणी वह निकली जिसके तीर निर्मल नीरमें पैठकर अपने मलिन मनको मज्जनद्वारा शुद्ध करसकता हूं ॥

मेरी यह बात सुनकर यदि कोई कहे कि इस परिच्छेदमें जो निरूपण किया गया है उससे क्या पुराणमतका खंडन नहीं होता ? तो मैं कहता हूं कि इससे पुराणमतका खंडन मंडन तो कुछ नहीं होता पर तुम जो पुराणोक्त विषयका मर्म न जानकर मन गढ़न्त कल्पना करसक्ते हो उसका खंडन तो अवश्य इस परिच्छेदमें है । इसपर यदि कोई कहे कि पुराणोंमें ग्रहणका हेतु क्या यह नहीं कहागया कि " सूर्य चन्द्रमाके बीच बैठ कर राहुने अमृत पान करलिया । पीछे सूर्य चन्द्रके सूचित करनेसे भगवान्‌ने सुदर्शनचक्रकी धारसे उसका शिरच्छेदन किया पर अमृतके प्रभावसे वह न मरा । तभीसे सूर्य चन्द्रमाको अपना वैरी जान वह दैत्य आ ग्रसता है " । इस पर मैं कहता हूं कि अवश्य पुराणोंमें ऐसा लिखा है पर लिखनेहारेका अभिप्राय कुछ और ही है । वह अभिप्राय जैसा मुझे प्रतीत होता है मैं वर्णनकर सुनाता हूं ॥

व्यासजीके इस कथनपर मेरी समझ तो ऐसी है कि भगवान् वेदव्यास जीने ऐसा कहनेके द्वारा भगवद्भक्त और अभक्तोंकी सुदशा और दुर्दशा अपने श्रोताओंको समझाकर यह उनपर प्रगट कर दिया है कि भक्तिका मार्ग कितना सुखकारी और अभक्तिका मार्ग कैसा दुःखजनक है । सो जैसा हमने अपने गभीर विषयको पाठकोंको सुगमतासे समझानेकेलिये कहीं कहीं दृष्टांत वा चित्र इस पुस्तकमें देदिये हैं वैसेही व्यासजीने अपने श्रोताओंको विशदरूपसे समझानेकेलिये ग्रहणका रूपक अच्छा बांधा है वाह क्यों न हो व्यासजी ! जैसे तुम पूर्ण विद्वान् थे वैसाही तुम्हारा यह रूपक

मी सब अंशमें पूर्ण है । लिखदेने वा बोलदेनेही से तो पंडितोंकी पंडि ताईका पूरा पूरा परिचय मिलजाता है । यथाः-

दोहा—कागा कोयल एक रंग, बैठे एकहि बाग।
बोलतही पहिचानिये, यह कोयल वह काग ॥ १ ॥

अय प्रियपाठको ! यदि तुम्हारी समझमें व्यासजीका रूपक ठीक ठीक न आया हो तो तुम्हारे समझनेकेलिये हम उनके रूपकके प्रबंधको कुछ साफ करके लिख देते हैं । उसे पढ़कर अपने पुराणोंके मर्मको भली भांति जानलो ॥

देखो सूर्य तो ब्रह्मकी उपमाहै । क्योंकि सूर्यमें अंधकारका लेश नहीं वैसेही ब्रह्ममें अज्ञानताका नाम नहीं । फिर सूर्य अपनी प्रभाद्वारा चराचर सृष्टिका उत्पादक, पालक, और अन्तमें अपनी आकर्षणशक्तिके द्वारा जगत्को अपनेमें लीन करलेनेसे संहारक ठहरनेके कारण इन गुणोंसे विशिष्ट ब्रह्मकी पूर्णोपमाके अतिही योग्य है ॥

फिर चंद्रमा जीवात्माकी उपमाहै । क्योंकि चन्द्रमा अपने आप प्रकाशित नहीं किन्तु सूर्यकी प्रभासे प्रकाशमान होताहै । इसी तरह यह जीवात्मा अपने आप प्रकाशित नहीं किंतु इसमें जो चमकदमक है सो ब्रह्महीकी है । फिर चन्द्रपिंडका वृद्धिक्षयरूप विकार कुछ नहीं होता किंतु उसकी कलाका वृद्धि क्षय होताहै । वैसेही जीवात्माकी वृद्धि क्षय आदि विकार कुछ नहीं किंतु हर्ष शोकादि मनको और जरामरणादि शरीरको विकार होते हैं । फिर चन्द्रमा सूर्यकी अपेक्षा बहुत छोटाहै वैसेही जीवात्माभी ब्रह्मकी अपेक्षा अत्यन्त छोटा है अस्तु इन बातोंमें समता होनेसे चन्द्रको जीवात्माकी उपमा देना बहुतही उचित है ॥

फिर "सूर्य चंद्रके बीच राहु दैत्य बैठा" ऐसा कहनेसे व्यासजीने दो बातें दर्साई हैं । एक तो यह कि जैसा चन्द्र और सूर्यके बीचमें बडा अन्तरहै अर्थात् करोडों योजन दूरहै वैसेही जीवात्मा और परमात्माके बीच बड़ाही अन्तर है दूसरी बात यह दर्साई है कि अन्तर होनेहीसे राहु जो तम और अगुआदि अंधकार अर्थात् छायाशब्दके पर्यायवाची शब्दों से

पुकारा जाताहै उसे बैठनेका अवकाश मिला वैसेही जीवात्मा और परमात्माके बीच छायासमान मिथ्या मायाको जो केवल अज्ञानतामूलक होनेसे अंधकार रूपहै स्थित होनेको जगह मिली । फिर राहुको जो दैत्य लिखा उसका आशय यही है कि दैत्यपदके अर्थकी रूढ़ि दुष्टता वा दुःखदायक शब्दपर है सो सोचनेसे स्पष्ट प्रतीत होताहै कि अज्ञानतासे बडा दुःख दायक पदार्थ संसारमें और कोई नहीं होसकता ॥

फिर राहुका अमृत पीकर अमर होना जो लिखाहै अर्थात् सुदर्शन चक्रद्वारा शिर कटनेपर भी न मरा ऐसा लिखाहै उसका तात्पर्य यह है कि यह अज्ञानता सुदर्शन अर्थात् अच्छे शास्त्रोंद्वारा कटजानेपर भी संसारसे नाश नहीं होजाती अर्थात् सृष्टिके आदिसे उसका प्रवाह जो चलताहै सो नहीं रुकता किंतु जैसा चलाआया है वैसाही आगेको भी चला जावेगा । इसी आशयसे राहुको अमर लिखा ॥

फिर "राहुका शिर काटने हारे भगवान्हैं" ऐसा जो लिखाहै उसका तात्पर्य यहहै कि भगवान्के नैत्यिक[१] और नैमित्तिक[२] दोप्रकारके अवतारहैं । वेही इस अज्ञानताके शिर काटने हारेहैं ॥

फिर वहां जो भगवान्का मोहनीरूप वर्णितहै उसका अभिप्राय यहहै कि भगवान्के जो दोप्रकारके अवतारहैं सो मोहनीरूपहैं अर्थात् जो असुर प्रकृतिके जीवहैं वे उनके रूपको यथार्थ न पहिचानकर उनको साधारण मनुष्यकी भांति मानतेहैं परन्तु जो भगवद्भक्त जन देवोपमहैं सो अपने प्रभुका यथार्थ रूप पहिचानकर हर्षित होतेहैं कि भगवान्ने भलारूप धारण कर इन दुष्टोंको छलाहै ॥

फिर जो राहुका वैर सूर्य चन्द्रसे कहागयाहै उसका कारण तो अतिही

---

१ नैत्यिक अवतार भगवान्का वहहै जो संसारकी भलाईके लिये महात्माओंके रूपमें नित्य नित्य हुआ करताहै । जैसा व्यास वाल्मीकी पाणिनि पतंजलि कालिदास तुलसीदास सूरदास आदि ।

२ नैमित्तिक अवतार भगवान्का वहहै जो निमित्त पायकर होताहै । जैसा रामकृष्ण आदि ।

स्पष्टहै कि ज्ञान और अज्ञानताके बीच दिनरातकासा विरोधहै। इस प्रकार परमात्मा जीवात्मा और मायाका रूपक दर्साकर भगवान् वेदव्यासजी अव भक्त अभक्तोंका रूपक अमावस और पूनोंके चन्द्रमासे बांधतेहैं॥ यथा-

सूर्य आकर्षणशक्तिसे चन्द्रमाको अपनी ओर खेंचताहै; पर चन्द्रमा पृथिवीकी शक्तिसे बंधाहै इसलिये उसीके इर्दगिर्द घूमता रहताहै। वैसेही परमात्मा जीवात्माको प्यारसे अपनी ओर खेंचताहै परंतु जीवात्मा संसारके बंधनसे बंधाहुआ उसीके इर्दगिर्द घूमताहै अर्थात् वारंवार जन्मता और मरताहै॥

फिर चन्द्रमा चक्कर लगानेमें जब अपने प्रकाशक सूर्यसे विमुख होने लगता तब उसका प्रकाश तो क्षीण होने लगता पर उसमें अंधकार बढ़ताजाता वैसेही यह जीवात्मा जब अपने सिरजनहारसे विमुख होने लगता तब उसका ज्ञानतो घटने लगता लेकिन् अज्ञानताका अंधकार दिनोंदिन बढ़ता जाता है निदान जब यह जीवात्मा पूरी रीतिसे अपने प्रभुके विमुख होकर नास्तिक बनजाता तब उसका रूप अज्ञानजन्य शोकादिसे ऐसा द्युतिक्षीण होजाता जैसा अमावसका चंद्रमा कलाहीन होताहै॥

फिर जब चन्द्रमा अपने प्रकाशक सूर्य भगवान्की ओर अपना मुंह करने लगताहै तब उसका प्रकाश दिनोंदिन बढ़ता जाता और अंतको पूरीरीतिसे सन्मुख होजानेपर एक अलौकिक दीप्तिको धारण कर संसारको अपनी चान्दनीसे आल्हादित करता है। वैसेही यह जीवात्मा जब अपने सिरजनहार प्रभुकी ओर मुख करने लगता तब उसका ज्ञान दिनों-दिन बढ़ता जाता और अन्तको जब वह पूर्णरीतिसे संमुख होकर अनन्य भक्त बनजाता तब उसकी बुद्धिका विकास अपूर्व होकर संसारी जीवोंको अपने उपदेशरूपी चटकचांदनीसे अत्यन्त आनन्दित करता है॥

फिर चन्द्रमाकी यह दशा पर्वपर्वपर हुआकरती वैसाही नास्तिक और अनन्य भक्त भी समय समय पर हुआ करते हैं॥

इस प्रकार व्यासजी अभक्त और भक्तजनोंकी दुर्दशा और सुदशाका रूपक चन्द्रद्वारा दर्साकर अब ग्रहणका रूपक दिखलाते हैं यथा-

वह चन्द्रमा जो कि सूर्यसे पूर्णविमुख होनेके कारण कलमुंहा होताहै जब कभी भूतलवासियोंके दृक्सूत्रमें आजाता है तब वह सूर्यकी प्रभाको भूतलपर आनेसे रोककर जगत्को अंधकारमें डालदेता है। वैसेही वह जीवात्मा जो प्रभुविमुख होनेसे नास्तिक अशुभदर्शन है जब कभी संसारिक लोगोंके सामने डंटकर व्याख्यानबाजी करने लगता है तब वह अभागा उन लोगोंके हृदयस्थलमें जो धर्म्मकी ज्योति चमकती रहती है उसका अवरोध करके अपनी कालिमाकी छाया डालता है। यही है सूर्यग्रहण अब चन्द्रग्रहणकारूपक भी सुनलीजिये । जैसा पूर्ण चन्द्र कभी कभी भूतलछायामें पड़कर अपनी सारी द्युति खोदेता है । वैसाही भगवद्भक्तभी कभी कभी संसारी मायामोहमें फंसकर अपना सब ज्ञान खो बैठताहै। इस विषयमें नारदादिकोंके मोहमें पड़नेकी कथा प्रसिद्ध हैं। यही हुआ चन्द्रग्रहण ॥

इस प्रकार काव्यविशारद भगवान् वेदव्यासजीने ग्रहणवर्णनके मिषसे भक्त अभक्तोंकी सुदशा और दुर्दशा दर्शाकर अपने श्रोताओंको सचेत किया है कि खबरदार जो तुम अपने सिरजनहार जगकर्तारसे विमुख हुए तो निश्चय संसारमें तुम्हारा मुंह काला होगा ॥

हे प्रिय पाठको ! व्यासजीकी उक्तिकी युक्ति जो मेरी समझमें आई सो तुम्हें कह सुनाई । अब तुमही कहो कि बुद्धिप्रभाधारी अज्ञानतिमिरहारी, जगन्मंगलकारी, व्यासरूपतमारीकी धर्म्मपथप्रदर्शक, किरणमाला किसको सुखकारी न होगी। अगर न होगी तो उल्लुओंको न होगी। क्योंकि उन्हें उसमें कुछ नहीं दीखता। उन्हें तो तमपूर्ण मिथ्या अर्थ प्रकाशकी वानरूपी रातमें सब कुछ दीखता है । इसीसे यदि वे सूर्यकी निंदा करें तो आश्चर्यही क्या है परंतु क्या उल्लुओंके निन्दा करनेसे सूर्यकी महिमा घटसकतीहै ? कभी नहीं; सो सूर्य तो सूर्यही रहेगा पर उल्लू उसके प्रकाशमें अपने संतानोंसमेत कहीं अंधेरे कोटरमें छिपेंगे ॥

इति गोलतत्त्वप्रकाशिकायां ग्रहणनिरूपणो नामाष्टमः परिच्छेदः समाप्तः ।

श्रीः ।

अथ ग्रहगतिनिरूपणो नाम नवमः परिच्छेदः ।

हे पाठको ! जैसा तुम्हें सौर परिकरमेंसे पृथिवीका आकार और आधार तथा चलना बतलाया गया है वैसाही और ग्रहोंका आकारादि जानो । फिर जैसा सूर्यके साथ होनेसे अर्थात् एक राशिमें होनेसे चन्द्रमाका अस्त अर्थात् अमावसके दिन न दिखाई पड़ना तथा भिन्न राशियोंमें उसका उदित दिखाई पड़ना बतलाया गया है वैसाही सब ग्रहोंका हाल जानो । तात्पर्य यह कि सब ग्रह अपनी अपनी कक्षामें स्थित सूर्यकी परिक्रमा देते हैं । सो जब वे घूमते घूमते ऐसे स्थानमें पहुंचते हैं कि जहांसे उनके मंडलका और सूर्यका तथा इस पृथिवीका एकही सीधमें संयोग होताहै तब वे अस्त कहे जाते हैं और जब वे उस सीधसे इधर उधर हटे हुए रहते हैं तब वे उदित कहे जाते हैं ॥

सूर्यकी परिक्रमा देनेमें सब ग्रहोंकी गति यद्यपि समान है परंतु हमारी पृथिवीकी कक्षा उनकी कक्षाओंके समान नहीं है अर्थात् किसीसे तो इसकी कक्षा छोटी है और किसीसे बड़ी है । इसी हेतु उनकी चालोंमें हमें भेद जान पडताहै अर्थात् कभी तो हम किसी ग्रहको आगेकी ओर साधारण चालसे बढता हुआ देखते हैं जिसे मार्गी कहते हैं और कभी साधारण गतिके दूने वेगसे चलता देखते जिसे अतिचार कहते हैं और कभी उलटा लौटते देखते हैं जिसे हम वक्री कहते हैं और कभी उसे स्थिरसा देखते हैं जिसे हम स्तब्धगति कह सकते हैं । यह चमत्कार आकाशमें प्रत्यक्ष उसी मनुष्यको देख पड़ताहै जो ग्रहोंका स्वरूप और अश्विन्यादि नक्षत्रोंका रूप यथार्थ पहचानताहै । जब ऐसा मनुष्य रात्रिके समय खुले मैदानमें खड़ा होकर किसी ग्रहको लक्ष्य करके देखता है कि यह ग्रह आज अमुक नक्षत्रके नीचे है फिर उसी ग्रहको कुछ दिन पीछे फिर लक्ष्य करके देखता है तब उसे इन गतिभेदोंमेंसे कोई न कोई अवश्य जान पड़ताहै । यदि वह इन भेदोंका कारण न जाने तो उसे ग्रहोंकी पूर्वकथित गतिके विषय बड़ा

संदेह उपज सकताहै । इसलिये अपने पाठकोंमेंसे वैसे विचक्षण पाठकके चित्तविनोदार्थ हम यहांपर उन भेदोंका कारण दर्साये देते हैं जिसके जाननेसे ज्योतिषी ज्योतिषी कहे जानेके योग्य होजाताहै ॥

हे प्रिय पाठको ! तुम भूभ्रमनिरूपण परिच्छेदमें यह बात पढ़चुके हो कि सब ग्रहोंकी योजनात्मिका गति यद्यपि समान है तथापि कक्षा छोटी बड़ी होनेसे उनकी कलात्मिका गति भिन्न भिन्न है अतएव वे ग्रह एक दूसरेकी अपेक्षा शीघ्रगति वा मन्दगति कहलाते हैं । सो जो कारण उनके शीघ्र मन्द कहलानेका है वही कारण पृथिवीसे उन ग्रहोंकी गति वक्री मार्गी आदि लखीजानेकाभी है । इस बातके जिज्ञासुको चाहिये कि वह मैदानमें जाकर एक खूंटी गाड़े । तिस पीछे उसकी चारोंओर पाँच हाथके व्यासका एक गोलवृत्त बनावे जैसा परकारसे बनता है । तत्पश्चात् एक दश हाथके व्यासका, फिर पंद्रह हाथके व्यासका, ऐसेही बीस, पचीस, तीस, और अन्तवाला चालीस हाथके व्यासका घेरा बनावे। फिर खूंटीको तो सूर्य माने और इन घेरोंको क्रमसे बुध, शुक्र, पृथिवी, मंगल, बृहस्पति, शनि ग्रहोंकी और सबसे पीछेवालीको नक्षत्रकी कक्षा जाने । इतना करके उस खूंटीको केन्द्रबिन्दु मानकर वहींसे सम क्षेत्रफलवाली बारह रेखा अन्तकक्षातक खेंचे। तब वह आकार ऐसा हो जावेगा; जैसा घड़ीका होता है । तदनन्तर जिज्ञासुको चाहिये कि घेरेके एक सिरेपर पूर्व और पूर्वकी विपरीत दिशामें पश्चिम लिखे। फिर पूर्वस्थानके दहिने बायें बाजू दक्खिन उत्तर लिखे फिर पश्चिमसे चढ़ावका आरंभ मानलेवे और पूर्वसे उतरावका। इतना करके वह सबसे पिछले घेरेके रेखा स्थानोंपर एक एक कंकर रख देवे और उन्हें बारह राशि मान लेवे फिर वह छः गोली छोटी बड़ी लेकर हरएक कक्षामें एक एक करके पहिले सबको एक सीधी रेखामें रख देवे और उन्हें क्रमसे बुध शुक्र आदिके गोले जाने और यहभी मानलेवे कि सृष्टिके आदिमें ग्रहोंकी ऐसीही स्थितिथी ।

१ हमारे शास्त्रोंमें ऐसाही लिखाहै; परन्तु पश्चिमी आधुनिक विद्वान् लोग सब ग्रहोंकी योजनात्मिका गति भिन्न भिन्न मानतेहैं; परंतु यह अतिसूक्ष्म बात है। हम बिना दृढ़ प्रमाणके मान नहीं सकते।

इसके पीछे वह हरएक गोलीको अपने अपने स्थानपरसे ठीक ठीक एक२ अंगुलकी दूरीपर चलाकर रक्खे और उसे जानलेवे कि यही सबग्रहोंकी योजनात्मिकागति एक दिनकीहै और यह गति सबग्रहोंकी समानहै । इसी तरह उन गोलियोंको फिर एकही एक अंगुल चलावे और दूसरे दिनकी गति जाने। इस प्रकार अंगुलअंगुलकी नापसे रोजरोजकी गतिके अनुसार वह गोलियोंको चलाताजावे तब वह देखेगाकि पहिले वृत्तवाली गोली जिसे उसने बुध मान रक्खाहै सो सबसे पहिले अपने कक्षावृत्तको घूमकर उसी पूर्व स्थानको जहांसे वह चलीथी पहुंचजावेगी । तिसके पीछे दूसरी फिर तीसरी ऐसेही चौथी पांचवी छठवीं सब एक एकके पीछे पहुंचजावेंगी अब विचारना चाहिये कि ये सब गोलियां गतिकी दूरीकी नापमें तो समान ही चलीथीं पर पूर्वस्थानमें यथाक्रम जो एक दूसरीके पीछे पहुंची इसका कारण क्या यही नहीं कि इन गोलियोंके कक्षावृत्त एक दूसरेसे छोटे बड़ेहैं । इसी प्रकार तुम्हारे ग्रहोंका भी हाल है अत एव वे एक दूसरेसे शीघ्र वा मंद कहलातेहैं । यह तो हुआ शीघ्र मन्द कहलानेका कारण अब ठीक यही कारण ग्रहोंकी गतिके वक्री, मार्गी, और स्तब्ध कहलानेका भी है ॥ यथा—

वह जिज्ञासु अपनी पृथिवीवाली गोलीको मानलेवे कि यह घूमती २ इस समय पश्चिमदिशाको प्राप्त होगई है और दक्खिन होकर पूर्वको अपनी चालसे जावेगी।उसी गोलीके पृष्ठतलपर मनुष्योंके रहनेकी भावना करलिईजावे। फिर वह पृथिवीकी कक्षाके भीतर वाली कक्षाकी एक किसी गोलीको मानलेवे कि यह भी घूमती घूमती संयोगसे पृथिवीकी सीधमें सबसे निकट अर्थात् पश्चिम दिशाको आगई है और यह भी पश्चिमसे दक्खिन होती हुई पूर्वको अपनी चालसे चली जाती है। इतना मनमें लाकर वह जिज्ञासु पृथिवीकी गोलीपर अपनेको बैठा हुआ मानकर यह कल्पना करे कि यह दूसरी गोली मेरी दृष्टिके सूत्रमें आगई है और वह दृष्टिसूत्र फलाने राशिके तारापर जा लगता है अर्थात् राशितारा और यह गोली हमारी आंखके ठीक सामने हैं इसलिये हम मानतेहैं कि यह गोली इस राशिमें है। इतना ध्यान जमाकर वह जिज्ञासु फिर अपनी पृथिवीवाली गोलीको पूर्व बतलाईहुई उसकी चालके

समान चलादेवे और उस गोलीको भी उसकी चालके समान चलादेवे तब क्या देखेगा कि, वह गोली पृथिवीकी गोलीकी अपेक्षा कुछ आगेको अर्थात् कुछ दक्खिनकी ओर अधिक बढ़गई है। इस अवस्थामें यदि वह अपनी दृष्टिका सूत्र फिर उसी राशि तारापर लगावे तो देखेगा कि, अब वह दूसरी गोली उस सूत्रमें नहीं आती किन्तु उस सूत्रसे कुछेक पश्चिमको हट गई है ॥

इस प्रकार देखकर हम उसे वक्री इस लिये कहते हैं कि वह साधारण नियमके विरुद्ध चलतीसी दीखती है। साधारण नियम तो यह है कि हर-एक ग्रह पूर्वकी ओर चलता है। जैसा अश्विनी नक्षत्रसे भरणीमें फिर उस से कृत्तिकामें ऐसेही रोहिणी आदिमें जाता है। अथवा यह कहो कि मेष राशिसे वृष राशिकी ओर जाता दीखता है अब विचारकर देखो तो यद्यपि वह गोली अपनी चालसे ठीक ही चली तथापि कक्षाकी छोटाई बड़ाईके भेदसे हम उसे वक्र मार्गसे चलती देखते हैं इसीसे उसे वक्री कहते हैं ॥

उसकी वक्र गति हमको चढ़ावके उस स्थानके पहुंचने तक दीखती जावेगी जिस स्थानको हम लोगोंके अपने अपने स्थितिके स्थानसे उठेहुए दृष्टि सूत्रकी तिर्छी रेखा न स्पर्श करेगी। फिर जहां वह तिर्छी दृग्सूत्रकी रेखा स्पर्श करती है वहांसे उस ग्रहकी स्तब्ध गतिका प्रारंभ होगा और वह स्तब्ध गति हमको उस स्थानके पहुंचने तक दीखेगी जिस स्थानसे वह तिर्छी रेखा फिर अलग न हो जावे। जहां वह अलग होगी उसी स्थानसे ग्रहकी गति मार्गी हो जावेगी। यह गति उस ग्रहकी कक्षा वृत्तके उस स्थान के पहुंचने तक देखी जावेगी जो स्थान हमारी पृथिवीसे सबसे दूर है। इसी स्थानसे उस ग्रहकी गति अतिचारकी हो जावेगी अर्थात् वह ग्रह साधारण मार्गी चालसे दूने वेगसे चलता हुआ दीखेगा। कारण यह है कि जिस समय तुम्हारी पृथिवी पश्चिम है उसी समय वह ग्रह इस पृथिवीसे सबसे दूर स्थानमें होनेसे पूर्वमें होगा सो तुम्हारी पृथिवी तो उस समय पश्चिमसे दक्खिनको चलेगी पर वह ग्रह पूर्वसे उत्तरको जाता दीखेगा।

इस दशामें पृथिवीकी गम्य दिशासे उस ग्रहकी गम्यदिशा बिल्कुल विपरीत है सो पृथिवीकी चालकी दूरीकी नाप और उस ग्रहकी चालकी दूरीकी नाप दोनों मिलकर हमारी दृष्टिको उस ग्रहकी साधारण चालकी दूरीकी नापसे दूनी प्रतीत होवेहीगी। जैसा घंटे भरमें चालीस २ मील चलने हारी दो रेल गाडियां एकही टेसनसे एकही समय छूटकर उनमेंसे एक तो पूरबको चले और दूसरी पश्चिमको तो एकही घंटेमें उन दोनों गाड़ियोंकी दूरीकी नाप अस्सी मील होजावेगी। ग्रहकी इसी चालको अतिचार कहते हैं। फिर इस अतिचार गतिके द्वारा जब वह ग्रह पृथिवीसे सबसे दूर स्थानको छोडकर कुछ हट जावेगा तबसे फिर उसकी चाल मार्गी होजावेगी और वह तबतक बनी रहेगी जबतक वह ग्रह उतरावके स्तब्ध गतिके स्थानपर अर्थात् पृथिवीसे तिर्छी खेंची रेखा स्पर्श स्थानपर न पहुंचे। वहां पहुंचतेही वह फिर स्तब्धगति दीखेगा। वहांसे वह ग्रह चलकर फिर पृथिवीसे अति निकट स्थानपर पहुंचेगा॥

यह तो पृथिवीकी कक्षासे भीतरी कक्षावाले ग्रहोंकी गतिका वर्णन हुआ पर जिन ग्रहोंकी कक्षा पृथिवीकी कक्षासे बाहर है उनकी वक्री अतिचार गति इन ग्रहोंके स्थानसे भिन्न स्थानमें हमको दीखेगी अर्थात् जैसा भीतरी ग्रहोंकी गति हमको पृथिवीके पश्चिम रहते अति निकट स्थानसे तो वक्र और अति दूर स्थानसे अतिचार दीखती है वैसेही बाहरी ग्रहोंकी गति हमको पृथिवीके पूर्व रहते अति निकट स्थानसे तो वक्र दीखेगी और अति दूर स्थानसे अतिचार दीखेगी। इसका भेद भी जिज्ञासुको बाहरी ग्रहोंकी गोली चलानेसे स्पष्ट प्रतीत होजावेगा॥

इस प्रकार ग्रहोंकी जो वास्तविक गति एकही प्रकारकी है सोई कक्षाके

---

१ पाठकोंसे मेरी यह प्रार्थना है कि मेरी इस भूलको जो जानबूझकर रक्खी गई है क्षमा करें भूल यह है कि वक्री मार्गी आदि विशेषण ग्रहके होने चाहियें पर मैंने इस पाठभरमें ग्रहके विशेषण न कहकर गतिके लिखे हैं ऐसा लिखनेका कारण केवल यही है कि प्रायः साधारण लोग ऐसाही बोला करते हैं सो उनके निःसंदेह समझनेके लिये ही यह व्याकरणकी भूल जानबूझकर रक्खी गई है।

वृत्तकी छोटाई बडाईके कारण चार प्रकारकी अर्थात् वक्र, मार्ग, अतिचार, और स्तब्धके रूपमें लखी जाती है। इस बातके स्पष्ट करनेके लिये हमने नम्बर १९ का चित्र दियाहै जिससे पाठकोंके समझनेमें और भी सुविधा होगया है॥

इति गोलतत्वप्रकाशिकाया ग्रहगतिनिरूपणोनाम नवमः परिच्छेदः।

श्रीः।

अथ तारा निरूपणो नाम दशमः परिच्छेदः।

हे प्रिय! अब हम तुम्हें ईश्वरकी अनन्त शक्तिके विषय इस परिच्छेदमें कुछ सुनातेहैं। इसे सुनकर सोचो कि वह कैसा अद्भुत शक्तिशाली बुद्धि-वैभवपूर्ण है॥

देखो जब तुम अंधेरी रातके समय मैदानमें खड़े होते होगे और आकाशकी ओर दृष्टि डालते होगे तब आकाशका अखंड मण्डल थोड़ी बहुत चमकसे चमकीले नीले, पीले, उजरीले, धुंधरीले, तारामंडलोंसे कचपच कचपच भराहुआ देखते होगे फिर बड़े आश्चर्यकी बात तो यहहै कि पृथिवीके एकही खंडसे यह बात नहीं दीखती वरन् समस्त पृथिवी मंडलमें यदि तुम भ्रमण कर सको तो जहां जाओगे वहांही यह मनोहर दृश्य तुमको अवश्य दीखेगा। भला अब सोचना चाहिये कि ये समस्त तारा हैं क्या वस्तु जो अपनी अनूपरूप झलझलाहटसे सोभीले, लोभीले, नीले, रंगीले गगनपटको टंके हुए हीरे, पन्ने, पदुमरागपोखराज माणिकीसी जगमगाहटसे जगमग जगमग कर रहेहैं॥

बहुधा हमारे इस देशकी भोली भाली बचेवाली माएं अपने चख पूतरि सम प्यारे दुलारे बच्चोंके पूछने पर यह कह कहकर उन्हें समझा देतीहैं कि

इस दशामें पृथिवीकी गम्य दिशासे उस ग्रहकी गम्यदिशा बिलकुल विपरीत है सो पृथिवीकी चालकी दूरीकी नाप और उस ग्रहकी चालकी दूरीकी नाप दोनों मिलकर हमारी दृष्टिको उस ग्रहकी साधारण चालकी दूरीकी नापसे दूनी प्रतीत होवेहीगी। जैसा घंटे भरमें चालीस २ मील चलने हारी दो रेल गाडियां एकही टेसनसे एकही समय छूटकर उनमेंसे एक तो पूरबको चले और दूसरी पश्चिमको तो एकही घंटेमें उन दोनों गाड़ियोंकी दूरीकी नाप अस्सी मील होजावेगी। ग्रहकी इसी चालको अतिचार कहते हैं। फिर इस अतिचार गतिके द्वारा जब वह ग्रह पृथिवीसे सबसे दूर स्थानको छोडकर कुछ हट जावेगा तबसे फिर उसकी चाल मार्गी होजावेगी और वह तबतक बनी रहेगी जबतक वह ग्रह उतरावके स्तब्ध गतिके स्थानपर अर्थात् पृथिवीसे तिर्छी खैंची रेखा स्पर्श स्थानपर न पहुंचे। वहां पहुंचतेही वह फिर स्तब्धगति दीखेगा। वहांसे वह ग्रह चलकर फिर पृथिवीसे अति निकट स्थानपर पहुंचेगा॥

यह तो पृथिवीकी कक्षासे भीतरी कक्षावाले ग्रहोंकी गतिका वर्णन हुआ पर जिन ग्रहोंकी कक्षा पृथिवीकी कक्षासे बाहर है उनकी वक्री अतिचार गति इन ग्रहोंके स्थानसे भिन्न स्थानमें हमको दीखेगी अर्थात् जैसा भीतरी ग्रहोंकी गति हमको पृथिवीके पश्चिम रहते अति निकट स्थानसे तो वक्र और अति दूर स्थानसे अतिचार दीखती है वैसेही बाहरी ग्रहोंकी गति हमको पृथिवीके पूर्व रहते अति निकट स्थानसे तो वक्र दीखेगी और अति दूर स्थानसे अतिचार दीखेगी। इसका भेद भी जिज्ञासुको बाहरी ग्रहोंकी गोली चलानेसे स्पष्ट प्रतीत होजावेगा॥

इस प्रकार ग्रहोंकी जो वास्तविक गति एकही प्रकारकी है सोई कक्षाके

---

१ पाठकोंसे मेरी यह प्रार्थना है कि मेरी इस भूलको जो जानबूझकर रक्खी गई है क्षमा करें भूल यह है कि वक्री मार्गी आदि विशेषण ग्रहके होने चाहियें पर मैंने इस पाठभरमें ग्रहके विशेषण न कहकर गतिके लिखे हैं ऐसा लिखनेका कारण केवल यही है कि प्रायः साधारण लोग ऐसाही बोला करते हैं सो उनके निःसंदेह समझनेके लिये ही यह व्याकरणकी भूल जानबूझकर रक्खी गई है।

वृत्तकी छोटाई वडाईके कारण चार प्रकारकी अर्थात् वक्र, मार्ग, अतिचार, और स्तब्धके रूपमें लखी जाती है। इस बातके स्पष्ट करनेके लिये हमने नम्बर १९ का चित्र दियाहै जिससे पाठकोंके समझनेमें और भी सुविधा होगया है॥

इति गोलतत्वप्रकाशिकाया ग्रहगतिनिरूपणोनाम नवमः परिच्छेदः।

श्रीः।

अथ तारा निरूपणो नाम दशमः परिच्छेदः।

हे प्रिय! अब हम तुम्हें ईश्वरकी अनन्त शक्तिके विषय इस परिच्छेदमें कुछ सुनातेहैं। इसे सुनकर सोचो कि वह कैसा अद्भुत शक्तिशाली बुद्धि-वैभवपूर्ण है॥

देखो जब तुम अंधेरी रातके समय मैदानमें खड़े होते होगे और आकाशकी ओर दृष्टि डालते होगे तब आकाशका अखंड मण्डल थोड़ी बहुत चमकसे चमकीले नीले, पीले, उजरीले, धुंधरीले, तारामंडलोंसे कचपच कचपच भराहुआ देखते होगे फिर वड़े आश्चर्यकी बात तो यहहै कि पृथिवीके एकही खंडसे यह बात नहीं दीखती वरन् समस्त पृथिवी मंडलमें यदि तुम भ्रमण कर सको तो जहां जाओगे वहांही यह मनोहर दृश्य तुमको अवश्य दीखेगा।भला अब सोचना चाहिये कि ये समस्त तारा हैं क्या वस्तु जो अपनी अनूपरूप झलझलाहटसे सोभीले, छैभीले, नीले, रंगीले गगनपटको टंके हुए हीरे, पन्ने, पद्मरागपोखराज माणिकीसी जगमगाहटसे जगमग जगमग कर रहेहैं॥

बहुधा हमारे इस देशकी भोली भाली बच्चेवाली माएं अपने चरव पूर्तरि सम प्यारे दुलारे बच्चोंके पूछने पर यह कह कहकर उन्हें समझा देतीहैं कि

भैय्या मैया तोर वलैया जाय ई सब तरैया जगरैया दैया किगैयाहैं।बबुआ! जब हमरे हियां सुरिज देवता अथै जातहैं और सांझ होथी तब सरगमें सबेर होथै । सो सब गैया चरैका ढील दिई जातीहैं । फिर जब हमरे हियां सबेर होथै तब उहां सांझ होथी।सोसब गैया चरचुरके गोसैंयाके घर चली-जातीहैं । ललुआ ! जैसे हियां सबेर होत सबगैया चरैका ढील दिई जातीहैं और गौधुरिया जून सब खरकासे बहुर आतीहैं और अपने अपने खूंटामें बांध दिई जातीहैं । वैसे इनहूंका जानौ ॥

कितने विचारे जो पढ़ेनगुने और बचपनमें ऐसी शिक्षा सुनेहैं सो सिरके बाल पनके तक ऐसीही भकुवे पनकी बात, बात चलनेपर कहा करतेहैं । पर जो कुछ पढ़े लिखे हैं वे तो इन भकुओंसे भी अधिक गये बीतेहैं । क्योंकि भकुवे तो अपने मनको इस भांति समझाके शांति लहतेहैं और शांतिही सुखका मूलहै पर विचारे जो ज्ञानसे नतो पूरेहैं न झूरेहैं।किन्तु अधूरेहैं । उन्हें कैसे सुख मिले । न तो वे इन भकुओंके समान मानही सकते न विज्ञानियोंके समान ठीकठीक जानहीं सकते। इस लिये उनके मनको यह शंका दहा करतीहै कि ये सब क्या वस्तुहैं ? भागवतमें सच कहाहै यथा–

श्लोक–योहिमूढतमो लोके यश्च बुद्धेः परंगतः ।
द्वाविमौ सुखमेधेते क्लिश्यतेऽन्तरितोजनः ॥ १ ॥

अर्थ–यह है कि जो संसारमें महा मूढ़हैं अथवा जो सर्वोपरि विद्वान्‌हैं येही दो सुख पातेहैं पर बीचवाला सदा दुःखी रहताहै । फिर गोस्वामि तुल-सीदासजी भी कहते हैं यथा "सबसे भले हैं मूढ़ जिनहि न व्यापै जगत गति" इत्यादि ॥

फिर यदि वे अधूरे विचारे अपनी बुद्धिसे तत्व खोज निकालनेमें थकित होकर इधर उधर गली कूचोंमें तीनों कालके फल कहनेके विषय किसी ज्योतिषीका विज्ञापन पढ़कर या किसी ज्योतिषीके विषय दसदस बीस बीस हाथकी जन्म कुण्डली वर्ष कुण्डली रंगनेकी बात सुनकर या प्रत्यक्षमें ज्यो-तिषी बाबाको टखनोंतक धोती लंबाये, कांच दिलाये, बगलमें पत्राद्बाये

गलमें माल झुकाये, माथे पर तिलक वा विभूति रमाये, मुंहमें पान चवाये, दांये, बायें, लोगोंसे घिरे देख कर मनमें यह जानकर कि "ताराओंकी विद्या जाननेहारेहीको ज्योतिषीकी पद्वी मिलाकरती है" सो मैं ऐसे ज्योतिर्वित्तिलकसे प्रश्नकर अपनी शंकाको दूर करूं। ऐसा ठान उनके पास जाता तो ज्योतिषी बाबा मनही मन गलगल हो जाते कि, एक शिकार और आया। फिर उसका स्वागत कर मंद मंद मुसकुराते हुए मानो उसके मनको अपने फन्दोंमें फंसाते हैं। उस पृच्छकसे मिष्ट मधुर वचनसे पूछते हैं कि कहिये क्या आपको कुछ प्रश्न करना है यदि करना है तो कीजिये। यह सुनकर वह पृच्छक जब अपनी शंका प्रगट करता तब ज्योतिषी बाबा विन कौड़ी पैसाका उसका सूखा प्रश्न सुनकर मनही मन तो कुढ़ जाते पर अपनी पोल छिपानेको कुछेक ऐसी वैसी बातें बनाकर बोलते हैं कि इन बातोंमें क्या धराहै ये सब तारा जो दीखतेहैं सो अश्विन्यादि नक्षत्र, विष्कुंभादि-योग, मेषादिलग्न और सप्तर्षि आदिके तारेहैं। ऐसा कहकर पिंड छुड़ातेहैं ज्योतिषी वाबाकी ये वातें सुनकर यदि वह पृच्छक चुप रहगया तो खैरहै औरजो कहीं वह पृच्छक इतनेसे संतुष्ट नहो और साहसी बनके उनसे फिर पूछताहै कि महाराज जो कुछ आप बतलाते हैं यदि उनको हम गिन डालें तो वे सौ या दो सौ हद्द पांचसौसे अधिक न ठहरेंगे परंतु जब हम आकाशकी ओर ताकते हैं तब क्या देखतेहैं कि पांचसौ तारे तो हाथही दो हाथकी दूरीमें पूरे होजातेहैं। फिर आकाशभरके तारे क्या वस्तु हैं तब इस अड़वड़ प्रश्नके सुनतेही ज्योतिषीजी गड़वड़ मचाने लगते हैं। कभी तो वे कहने लगते तुम इन गूढ़ बातोंके समझनेके अधिकारी नहीं कभी कहते हैं कि स्कूल मदरसेमें पढ़नेसे तुम्हारी बुद्धि नष्ट होगई तुम तो नास्तिक होगये हो तुम ब्राह्मणोंका ठट्ठा करते हो कभी कहते कि, हमें ऐसी ऐसी निकम्मी बातोंके करनेके लिये फुरसद नहीं। कहांतक कहें जिस तरहसे बन पड़ता अपना पीछा छुड़ाते पर उस वेचारेकी शंकाको नहीं छुड़ाते। अगर छुड़ावें भी तो कहांसे छुड़ावें। इस पर एक कहावत याद आगई। वह यह है कि "एक रहा एक रहे धरा खीस निपोरे दोनों खड़ा" सिद्धान्त ग्रन्थोंको तो

पढ़ाही नहीं पढ़ा है केवल इतना कि " चू चे चो ला अमुनी ली लू ले लो भरणी " आदि होडाचक्रकी बातें और कुछ ठगनेकी बातें परंतु दावा है देवज्ञ चूडामणिका । यदि किसीने बहुत पढ़ा तो चिंतामणि और मार्तंड और कुछ फलित ग्रंथकी बातें । इतनेहींमें ज्योतिषीजीकी पूंछ बढ़कर लोग लोगाइयोंमें फैल जाती है आगे पढ़नेकी उन्हें फुरसद कहां पेटकी रोटियां मजेमें चलने लगीं । बस विद्या पढ़नेका जो फल था उन्हें मिलने लगा आगे पढ़ें उनकी बलाय, सौभाग्यसे यदि किसीने छः अधिकार ग्रह लाघवके पढ़लिये और कहीं एकाध अध्याय कहने सुननेके लिये सूर्य सिद्धान्त के पढ़लिये तो फिर ज्योतिषीजीकी *महिमाकी गरिमा घर घर मा गाई* जाती है अब तो ज्योतिषीजी सिद्धान्ती बनके गर्वके पर्वतपर चढ़ेहुए अपर पंडितोंको खर्व कह कहकर सर्वज्ञानीका दावा करने लगे । मुंहसे बोलते तक नहीं । कहीं सेठ साहूकारकी दर्बारमें या साधारण पंडितोंकी समाजमें जाते तो गद्दीसे उठंगकर ऐंठके साथ बैठ जाते और प्रसंग आजानेसे उन अनजानोंके बीच बातबातमें सिद्धान्तका नाम लेलेकर लंबी चौड़ी हांकने लग जाते और कभी कभी अपनी प्रशंसा सूचक यह वचन सुना दिया करते कि " दशदिनकृतपापं हन्ति सिद्धान्तवेत्ता " । इसप्रकार उनकी बातें सुनसुन साधारण लोग कहने लग जाते बापरेबाप पंडितजी तो साक्षात सूर्य हैं । यह हाल आजकालके हमारे यहांके ज्योतिषियोंका प्रायः है । हे पाठको ! देखो ऐसे ज्योतिषीकी प्रशंसा भास्कराचार्यजी कैसी करते हैं ॥

श्लोक–भोज्यं यथा सर्वरसं विनाज्यं राज्यं यथा राजविवर्जितं च । सभा न भातीव सुवक्तृहीना गोलानभिज्ञो गणकस्तथात्र ॥ १ ॥

अर्थ–यह है कि जैसे सर्वरस सम्पन्न भोजन विना घीके अच्छा नहीं लगता और विना राजाका राज्य अर्थात् देश नहीं सोहता तथा अच्छे बोलनेहारेके बिना जैसा सभा नहीं भाती वैसाही गोलज्ञानसे हीन ज्योतिषी नहीं अच्छा लगता ।

हे प्रिय पाठको ! ज्योतिषीपनेका गोलज्ञान प्राण समान है उसके विना ज्योतिषी मुर्दा समान है। हाय ! जिस गोलज्ञानके विषय किसी समय भारत वर्षीय पंडितोंका संसार भरमें झंडा फहराय गया था उसी ज्ञानके विषय इस समय भारत वर्षके पंडित लोग शून्यप्राय हो रहे हैं हाय जो ज्योतिषी शब्द किसी समय करामलकवत् विश्वको जानने हारे हमारे ऋषि मुनियोंको मिलनेसे सार्थक और महती प्रतिष्ठाका सूचक समझा जाता था वही ज्योतिषी शब्द इस समय पंडित विडम्बनाकारी, गोलानधिकारी, द्वारद्वारके भिखारी लोगों-के मिलनेसे हास्यास्पद ठहरता है। परंतु जानना चाहिये कि मरे पीछे अपनी दुखियारी स्त्रियोंसे "हाय राजा हाय राजा" ऐसा कह कहकर रोये जाने हारे उनके पति राजा शब्दसे संबोधित होनेपर भी सच्चे राजा नहीं ठहर सकते किंतु सच्चा राजा वही ठरहता है जो राजसिंहानपर मुकुट धारण किये विरा-जता है। ऐसे ही ज्योतिपी वही है जो गोल ज्ञानका अधिकारी है। ऐसे उत्तम ज्ञानको आज कलके ज्योतिपी सीखना नहीं चाहतेहैं। चाहते क्याहैं ठगविद्यासे पैसा कमाना। इसीसे तो यह देश ऐसी दुर्दशाको प्राप्तहोरहाहै और अभी क्या हुआहै यदि यहांके लोग इसी भांति सच्चे ज्ञान पानेसे मुंह मोड़ते रहें तो निश्चयही जानो कि यह देश पृथिवी परसे ऐसा लोप होजावेगा जैसा निर्जल मूलवाली नादियां थोड़ेही समयमें लोप होजातीहैं। गीतामें कृष्ण भगवान् कहतेहैं हे अर्जुन बुद्धिके नाशसे मनुष्य नष्ट होजा-ताहै। इससे हे भाइयो ! जो हुआ सो हुआ अबभी जागो सच्ची विद्याका आदर करो फिर तुह्मारा दिन बहुरेगा। जैसा तुह्मारे पूर्व पुरुष संसारमें अपना अद्भुत प्रताप जमा गयेहैं वैसाही तुमभी करसकोगे। क्योंकि ऐह-लौकिक पारलौकिक सुखका मूलतो ज्ञानही है जब तुम उसे पालोगे तब तुम्हें पानेमें क्या बाकी रहजावेगा। अस्तु ॥

अब हम अपने पाठकोंको यह बात समझातेहैं जो अश्विन्यादि नक्षत्र तथा ग्रहके ताराओंसे भिन्न तारासमूह आकाशमें दिखाई पड़तेहैं ॥

पाठको ! तुमने भागवत गीता आदिकी कथा बांचते हुए पंडितोंको यह कहते सुनाही होगा कि ईश्वरके रोमरोममें ब्रह्माण्ड ऐसे लटकेहैं जैसे गूलरके

पेड़में उसके फल लगे रहतेहैं । सुना तो होगा और पुस्तकोंमें पढ़ाभी होगा पर क्या जाने तुह्मारी समझमें यह बात न आई होगी वह बात यही है कि आकाशमें जो तुह्मारे जाने पहिचाने ताराओंसे भिन्न अचल तारा दीखतेहैं सो सबके सब दूसरे ब्रह्माण्डके सूर्य हैं जैसा तुम्हारे इस ब्रह्माण्डमें एक सूर्य है और उसकी चहुं ओर ग्रह घूमतेहैं वैसाही दूसरे दूसरे ब्रह्माण्डोंमें भी एक २ सूर्य है और उन सूर्योंकी चारोंओर भी इसी तरहके ग्रह उपग्रह घूमा करते हैं । सो उन ब्रह्माण्डोंमेंके ग्रह उपग्रह तो तुमको दीखते नहीं पर उन ब्रह्माण्डोंके सूर्य तुमको दीखते हैं क्या जाने यह सुनकर तुम कहोगे कि बापरे बाप हमारे एक सूर्यका ताप तो हमें इतना व्यापता है कि हम व्याकुल होजाते हैं फिर जब ये सब सूर्य हैं तो हम लोग मर क्यों नहीं जाते तथा रातके समय हमें उन करोडों सूर्योंसे हमारे इस एक सूर्यके समानभी उजाला क्यों नहीं मिलता ? इसका समाधान यह है कि वे इस अनन्त महाकाशमें इतनी दूर हैं कि वे सूर्य हमारे सूर्य समान न दीखकर टिमटिमाते दीपककी भांति दीखते हैं । इसी दूरताके कारण न तो तुम्हें उनका उजेला मिलता है और न गरमी फिर यदि तुम पूछो कि वे दिनके क्यों नहीं दीखते तो ऐसा जानो कि तुम्हारा सूर्य उनकी अपेक्षा इतना निकट है कि उसके धकधके उजालेके आगे उनका तेज नहीं रहता । देखो जो तुम एक बड़ी भारी आग जलाओ और उसके पीछे बहुत दूर पर दूसरी आग जलाओ तो क्या होगा कि दूरवाली आग तुम्हें इस समीप वाली आगके आगे रह-नेसे न दीखेगी । इसी तरह वे सूर्यभी तुम्हें दिनमें नहीं दीखते । हां रातमें जब तुम्हारा सूर्य छिप जाताहै तब उनका कुछ कुछ प्रकाश यहांतक आताहै । फिर जब दूसरे ब्रह्माण्डोंके सूर्योंकी यह दशा है कि दूरताके कारण इतना बड़ा होनेपर भी इतना छोटा दीखता है तब तुमही सो-चो कि दूसरे ब्रह्माण्डके ग्रह उपग्रह जो सूर्यसे करोडों गुना छोटे हैं कैसे दीखें । इन दूसरे ब्रह्माण्डोंके सूर्योंमेंसे जो तुम्हें कोई बहुत चमकीले और कोई कम चमकीले दीखते हैं इसका कारण यही है कि जो कुछ निकट हैं सो तो चटकीले और जो अधिक दूर हैं सो धुंधरीले

दीखते हैं। सच मुचमें वे सब तुम्हारे इस सूर्यके समान बड़े और देदी-प्यमान हैं। फिर यह भी अनुमान बंधता है कि इस अनन्त महाकाशमें क्या जाने और भी इतनेही इतनेही क्यों वरन अनन्त सूर्य होंगे जो हमको दूराति दूर अत्यन्त दूर होनेके कारण दीखहीनहीं सकते जब यह बात भली भांतिसे सिद्ध होगई कि ये जो दीखते हैं सो सबके सब दूसरे ब्रह्माण्डोंके सूर्य हैं तब सहजही जाना जाता है कि जैसा इस हमारे सूर्यके साथ इतने ग्रह हैं जो घूमा करते हैं और जिनमेंसे एक हमारी यह पृथिवी है जिस पर बड़े बड़े समुद्र, पहाड़, बन, नदी, नद, नारे आदि विद्यमान हैं। वैसाही उन सूर्यों-के साथ भी बहुतसे ग्रह होंगे जिनमेंसे प्रत्येकमें समुद्र, पहाड़, वगैरः होंगे इसीसे तो हमारे यहां गीता भागवत आदि ईश्वरमहिमाप्रतिपादक ग्रंथोंमें भगवानके विराट्रूप वर्णनके प्रसंगमें अनेकन सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी' समुद्र, पहाड़, आदि होनेकी बात बहुत विशद रूपसे वर्णित है। भक्तशि-रोमणि कविकुलभूषण दूषणरहित श्रीयुत गोस्वामि तुलसीदासजी अपनी रामायणमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजीके अपनी माताको स्वश-रीरमें विश्वरूपदर्शनके प्रकरणमें ऐसा ही लिखते हैं यथा–

दोहा–दिखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रतिराजहिं कोटि कोटि ब्रह्मंड ॥ १ ॥

चौपाई–अगनित रवि शशि शिव चतुरानन।
बहु गिरि सरित सिंधु महिकानन ॥
काल कर्म गुण ज्ञान स्वभाऊ।
सो देखा जो सुना न काऊ ॥ २ ॥

अब हमारे पाठकोंको यह शंका घेरती होगी कि भगवान् रामचन्द्रजी जो उस समय बाल स्वरूप थे सो यह सब बड़े बड़े सूर्य, चन्द्रमा, समुद्र, पहाड़, आदि अपने नन्हेसे रूपमें कैसे दिखलाया होगा? हे प्रिय पाठको! रामचन्द्रजीने अपने नन्हेसे रूपमें ये सब वैसेही दिखाया होगा जैसा चतुर चित्रकार इस विशाल भूगोलके रूपको एक नन्हेसे गोल वृत्तमें दिखला देता।

है । जहां पर वड़ा शहर होता है वहां वह चित्रकार एक नन्हासा बिंदु रख देता है । इसी भांति भगवान् रामचन्द्रजीने अपने वालस्वरूपमें नन्हे नन्हे अर्थात विन्दुमात्र सूर्यादिकोंको दिखाया होगा ॥

इति गोलतत्वप्रकाशिकायां तारा निरूपणोनाम दशमः परिच्छेदः ।

श्रीः ।

मुक्तिसाधननिरूपणोनाम एकादशः परिच्छेदः।

अव हम अपने पाठकोंको इस पुस्तकके रचेजानेका कारण वतलाकर ग्रन्थ समाप्त करते हैं, मेरे इस पुस्तकके रचनेका अभिप्राय इसे पढ़कर कोई कोई सोचेंगे कि पंडितजीने इस पुस्तककी और और उपन्यासादि रचयिताओंकी भांति अपनी विद्वता प्रगट करनेके अभिप्रायसे रचा होगा । ऐसी कल्पना करनेहारोंसे मेरी हाथ जोड़कर यह प्रार्थनाहै कि वे लोग मेरे विषय ऐसी कल्पना न करें क्यों कि यदि मेरा ऐसा अभिप्राय होवे तव तो मैं उस मूर्खके समान हास्यास्पद ठहरूंगा जो छिनगुरियामें एक पतलासा सोनेका छल्ला पहिने हुए स्वर्णमयी रावणराजधानी लंकामें जाकर अपनेको स्वर्णधनी मानकर वहांके निवासियोंसे सोनेका घमंड करे । भला विचारो तो सही कि कहां तो इस समयके कालिजोंके सीखेहुए वड़े वड़े एम एले ल्डी आदि उपाधिधारी विज्ञातिविज्ञ, अनेक भाषातत्वज्ञ, अंग्रेज लोग तथा भारतवर्षीय वावूगण महोदय और कहां तुच्छातितुच्छ अति अल्पज्ञ मैं जो अंग्रेजीके अक्षर " ए वी सी डी " तक नहीं पहचानता । और न अर्वी फारसी उर्दूहीके " अलिफ् वे पे ते " अक्षर पहिचानता मैं जानता क्याहूं केवल संस्कृतके अक्षर " अआ इई " आदि उसमें तुर्रा यहहै कि अक्षरही पहचानताहूं संस्कृतभी अच्छी तरहसे नहीं जानता । कहांतक कहूं हिन्दु-

स्तानकी सार्वजनिक भाषा जो हिन्दीहै में उसेभी जैसा जानना चाहिये वैसा नहीं जानता हिंदी न जाननेका परिचय तो पाठकोंको इस पुस्तकके पढ़नेही से भलीभांति मिलजायगा कि कैसी भद्दी नीरस भाषामें लिखी है। इससे अधिक और क्या कहूं। मेरी यह बात सुनकर कोई ऐसा अनुमान न बाँधे कि पंडितजी अपनी हीनता अधिक बढ़ाकर लिखतेहैं कुछनकुछ अंग्रेजी फारसी आदि भाषा जानते होंगे। नहीं नहीं पाठको ! मैं शपथपूर्वक कह सकताहूं कि मैं अंग्रेजी फारसी कुछ नहीं जानता भला यह मुझ सरीखे कलियुगी पामर जीवोंसे कहां होसकता कि अपनी हीनता दिखलाऊं विशेषकर ऐसे समयमें जब कि भारतवर्षीय पंडित थोड़ा जाननेपरभी प्रायः सर्वज्ञका दावा रखतेहैं। इस लिये जो कुछ मैं लिखना हूं सो सब सत्यहै इसबातके साक्षी मेरे सहस्रों परिचित जन हैं। जब कि मेरी यह दशाहै तब भला उन बड़े बडे एमे आदिके डिप्लोमा प्राप्त किये हुओंके साम्ने अपनी विज्ञता और पंडिताई दिखलाकर मूर्ख और हास्यास्पद न ठहरूंगा तो क्या ठहरूंगा सो मेरे पाठक लोग यह भूलसेभी न सोचें कि पंडितजीने अपनी पंडिताई । बघारनेके लिये यह पोथी लिखीहै ॥

मेरे इस पुस्तक लिखनेके मुख्य चार कारण हैं । जिन्हें मैं पाठकोंपर प्रगट किये देताहूं ॥

प्रथम कारण तो यह है कि गोलज्ञान जिसके जाननेसे मनुष्यको अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होताहै सो संस्कृत या अंग्रेजी भाषामें विद्यमान है सो कालकी कराल गतिसे इस समय भारतवासियोंकी रुचि संस्कृत भाषाकी ओर वहुत कम होगई है। जिसका फल भी वे भली भांति भोग रहे हैं। हां अंग्रेजी पढ़ने पढ़ानेकी चर्चा कुछ नगरनिवासियोंमें पाईजाती है सो कुछ ज्ञानवृद्धिके हेतुसे नहीं किन्तु इस पापी पेटकी जलनके बुझाने की फिकरसे। हजार मनुष्योंमेंसे विरला ही कोई निकलेगा जो अंग्रेजी इस सोचसे पढ़ता होगा कि मैं इसे पढ़कर और ज्ञानसंचय करके देशोपकार करूं किंतु वहुधा लोग इसी सोचसे पढ़ते हैं कि अंग्रेजी पढ़कर नौकरी प्राप्त करके अपना पेट पालन करें। जब मूलहीमें उनका विचार ज्ञानसंच-

यका नहीं रहता किंतु जिस तिस प्रकारसे गुलामी करके धन पैदा करनेका ही रहता है तब ऐसे संकीर्णहृदय मनुष्य यदि भाग्यसे उच्चश्रेणीकी शिक्षा प्राप्तभी करलेवें तौ भी अपने मूल विचारको वे कब छोड सकते हैं। क्योंकि उनकी शिक्षाकी नीव तो स्वार्थहीपर पड़ी है। वैसाही फल भी देखा जाता है कि यदि उन पेटुओंको भाग्यसे छोटी बड़ी सर्कारी नौकरी कहीं मिलगई तो वे चिर वांछित स्वार्थसाधनमें गुड़ चींटाकी भांति लिपट जाते हैं ऐसे लोग न तो धर्म्म विचारें, न अधर्म्म विचारें, रातदिन हाय पैसा हाय पैसाकी धुन उनपर सवार रहती है। इसी धुनमें गुनगुनकरते उनके सभी करमधरममें घुन लगजाता है। यदि उनको कोई चितावैभी तो जल भुनकर कहते हैं कि तुमही अपने चरखामें तेल लगाओ। भला जो लोग स्वार्थसाधनमें ऐसे हाल वे हाल हैं वे कब इस गोलज्ञानके अपूर्व आनन्दको अनुभव कर सकते हैं। जब कुछ पढ़ेही लिखे लोग इस आनन्दको नहीं पाते तब केवल हिंदी जाननेहारे विचारे कैसे जान सक्ते हैं। इस प्रकार अपने भाइयोंको एक बारगी इस आनन्दसे वंचित देख मेरे विचारमें आया कि यदि यह विषय संस्कृतसे हिन्दीमें कर दियाजाय तो मातृभाषा में होजानेसे थोड़ा बहुत पढ़ेहुए लोगोंको समझनेमें तो बहुतही सुविधा होगा और जो केवल हिंदीही जानते हैं अथवा कुछ भी नहीं जानते यदि वे लोग जानना चाहें तो अति थोड़े परिश्रम और कालमें जान सकेंगे। बस यही विचार मैंने इसे हिंदीमें लिखा। लिखते समय मैंने अपनी शक्तिभर दृष्टान्त चित्र आदि देकर तथा सरल हिन्दीकी ओर ध्यान रखकर वैसाही प्रयत्न किया है जिससे सुबोध्य ग्रंथ होगया है। इस ग्रंथके लिखनेका मेरा यह प्रथम कारण है॥

फिर दूसरा कारण यह है कि आजकल विधर्म्मी लोग जिस प्रकार हमारे सनातन धर्म्मरूपी वृक्षकी जड़पर कुतर्कका कुठाराघात कर रहे हैं सो किसीसे अविदित नहीं है। हरएक जानता है कि विधर्म्मी लोग इसी गोलज्ञानके सहारे हमारे ऋषिप्रणीत परम पुनीत धर्म्मग्रंथ पुराणोंको प्रत्यक्षमें झूठा ठहराकर भोले भाले लोगोंसे कहीं अधिक उन लोगोंको

जो थोड़ा बहुत स्कूलमें पढ़नेसे खड़े खड़े भूतना सीख गये हैं धर्म्मकी ओरसे बहॅकालेते हैं । इस कारणसे भी मैंने यह छोटीसी " गोलतत्वप्रकाशिका " नामकी पोथी बनाई और जहां कहीं पुराणमत और ज्योतिषके सिद्धान्त मतमें विरुद्धता सी जानपड़ती थी उसकी प्रसंगानुसार मीमांसा करके इस पुस्तकमें भली भांति यह दरसा दिया गया है कि हमारे पुराण और ज्योतिषके सिद्धान्त ग्रन्थ भिन्नरूप दीखनेपर भी वास्तवमें भिन्न नहीं किन्तु नाटे लंबे, काले गोरे, मोटे दुबले, भिन्नरूपवाले सहोदर भाई कीनाई वेद पिताके एक ही रूप वचन बीजद्वारा ईश्वरीय महिमारूपी माके गर्भमेंसे उत्पन्न हुए हैं । यद्यपि इस छोटीसी पुस्तकमें पुराणकी गूढ़ार्थ बातें यथाप्रसंग बहुत थोड़ी दिखलाई गई हैं । तथापि जितनी लिखी गई हैं उन्हींसे हमारे विज्ञ पाठक पुराणोंके विषय जान सकते हैं कि उनकी सब बातें निःसंदेह पक्की हैं । हांडीमेंके दोही तीन चॉवल जांचनेसे हांडीभरका पता भली भांत लग जाता है । यदि सब जांचे जायं तो भात, भात न रहकर मांड बन जावेगा ॥

अब हम अपने पाठकोंको तीसरा कारण बताते हैं जो मुख्यातिमुख्य है । वह यह है कि इस संसारसागरमें जो छोटे बड़े जलजन्तु सम नर नारी भरे हैं सो सबके सब महामोहके जंजालमें फंसे हुए अपना अपना विनाश न देखकर अपनेसे छोटे जीवोंको खाये जाते हैं । वे नहीं देखते कि जैसे ये दीन जीव शक्तिहीन होनेसे हमारा शिकार बन रहे हैं वैसा ही हम भी अपनेसे बलवान्के शिकार किसी दिन बनजायंगे । ऐसी अज्ञानतामें पड़े हुए चोरी घूस खोरी बरजोरी चुगुलखोरी फोरफारी लबारी छिनारी जमामारी हत्यारी आदि भारी भारी खुवारी संसारी जीवधारी कियाकरते हैं ॥ जब हम विचारकी दृष्टिसे देखते हैं कि इस अनर्थका मूल क्या है तब यही एक बात पाते हैं कि लोग उस चराचरके स्वामी घट घटके अन्तर्यामी सर्वशक्तिमान् भगवान्को नहीं जानते इसीसे ये सब बातें होती हैं । हमारी यह बात सुनकर यदि कोई कहे कि यह ठीक नहीं है । क्योंकि संसारमें विरलाही कोई नास्तिक होगा जो ईश्वरको जानता और

मानता न होगा तो हम उससे यह कहते हैं कि भाई ! मुंहसे कोई बात कहदेना और बात है और कामोंसे कर दिखाना कुछ और ही बात है। भला तुमही कहो कि देशभरमें ऐसा कौन मनुष्य है जो अदनासे अदना हाकिमकी हुक्म अदुली जान बूझकर करना चाहता हो। वह हाकिमकी हुक्म अदुली करना क्यों नहीं चाहता क्योंकि वह हाकिमसे प्रेम और भय दोनों रखता है। वह खूब जानता है कि मैं इनकी हुकूमतसे बेखटके रह कर अपना कारोबार करके रोटी कमाता जिससे मैं और मेरे बाल बच्चे अच्छी तरहसे पलतेहैं। फिर चोरी डकैती आदि अनेक उपद्रवोंसे बचके सुख चैनसे हम सब दिन काटतेहैं। इन्हीं कारणोंसे उसके मनमें हाकिमसे प्रेमहै। फिर भय इस बातसे है कि यदि मैं इनका हुक्म न मानूं तो ये मुझसे अधिक शक्तिमान् हैं। इनके विरोधसे मेरा उबारा नहीं। घर दुवार मेरा सब लूट जायगा बाल बच्चे इधर उधर मारे मारे फिरेंगे और मैं जेलमें पड़ा पड़ा सड़ा करूंगा मेरी बुरी दुर्गति इनसे विरोध करनेमें होगी। देखो इन्हीं दो बातोंके कारण अर्थात् मनमें प्रेम और भय होनेके कारण लोगोंके कामभी दो प्रकारके देखे जाते। उनमेंसे प्रेमके काम तो ये हैं कि लोग हाकिमके साम्ने जानेपर झुकझुककर तीन बार सलाम करते और नाना भांतिकी चीजें भेंट नजरानेमें ले जाते और "हुजूर तो हमारे मा बाप हैं" ऐसा कहकर राजभक्त होनेका पूरा पूरा परिचय देतेहैं। फिर जब कभी अपने ऊपर हाकिमकी खफगी सुनते और सन्मुख जानेपर उसको तिवरी चढाये मुंह फुलाये देखते तब रोम रोममें भय व्याप जानेसे थरथर कांपने लगते। उसी समय यदि हाकिम उनकी ओर क्रूरदृष्टिसे घूरकर जोरसे बोलता कि "क्योंरे" इतना सुनतेही तो मारे डरके उनमेंसे बहुतोंके तो धोतीमें झाड़ा पेशाब छूट पड़ता और चक्कर खाकर जमीनपर गिर जाते हैं। अब तुमही इस बातको विचार करके कहो कि जब न कुछ एक छोटेसे देशके अधिकारीके प्रेम और भयके मारे मनुष्योंकी ऐसी दशा होजाती है तब क्या उस कोटि कोटि ब्रह्माण्ड नायक चराचरसुखदायकके उत्तम उत्तम अनेक प्रबंधोंके कारण उससे प्रेम करना उचित न था जिन प्रबंधोंसे मनुष्यमात्र संतुष्ट और हृष्ट पुष्ट

होते हैं और जिन्हें यह संसारी राजा वा अधिकारी हजार सुप्रबंध करके भी पूरा तो क्या अधूरा भी नहीं कर सकता। जैसा संसारी राजाओंमेंसे कौन ऐसा दयावान् हुआ वा होसकता जो बिचारे दीन हीन जनोंके लिये ऐसा प्रबंधकर सके कि उन्हें हर समय भोजन तैयार मिला करे पर उस दयालु परमात्माने तुम सभोंके लिये ऐसाही प्रबंध किया। देखो जिस समय तुम नन्हेंसे बच्चेथे क्या अपने लिये कुछ कमा सकते थे अथवा क्या भोजन बनासकते थे या बना बनाया भोजन खा सकतेथे। तुम सिवा रोनेके और कुछ नहीं कर सकतेथे। जब ऐसे लाचारथे तबभी परमेश्वरने तुह्मारी खबर ली। उसने ऐसा अच्छा प्रबंध किया कि तुम हरवक्त मिष्ट मधुर पुष्टिकारी अपनी महतारीका दूध पासके। फिर तुह्मारा संसारी राजा तुह्मारी क्या भलाई कर सकता। जो कुछ करतासा दिखाई पड़ताहै उसमेंभी अपनीही भलाई साधताहै। सचतो यहहै कि तुम्हारे सर्व सुखकी सामग्रियोंमेंका सार भाग वही लेलेता बचा खुचा तुमको देताहै। देखो जिन वस्तुओंको उस दयावान् परमात्माने अपनी अपार दयासे जीवमात्रके सुखकेलिये संसारमें सिरजाहै जैसा फल फूल कंद मूल आदि उद्भिज्ज पदार्थ तथा खनिज पदार्थ उनकोभी अपनी जबर्दस्तीसे अपनाय कर उनपर टैक्स लगाता है मानो उसीके बापकी ये चीजेंहैं कहांतक कहें जो हमारे जीवनमूल अन्न जल नमकहैं उन परभी टैक्स इतनाही क्यों बल्कि हमने मूतनेतकके लिये हमें टैक्स देना पड़ताहै। यदि तुम कहोकि येटैक्स अगर न दिये जायं तो देशका अच्छा बंदोबस्त कैसे हो तथा फौजफाटा कैसे रहे इसलिये अवश्यहै कि टैक्स लियाजावे। इसीसे तो हम कहते हैं कि यह संसारी राजा तुह्मारी भलाई कुछनहीं कर सकता। क्योंकि वह बात बातमें लाचारहै जैसाकि तुम; और जो कुछ भलाई करताहै वह उसीकी सहायतासे। फिर संसारी राजा अतिशय न्यायशील होनेपर भी प्रमादसे वा कर्मचारियोंके अत्याचारसे हजारों अन्याय किया करता है पर वह राजोंका अधिराजा कभी किसी तरह की नतो भूल करता न पक्षपात करता उसकी दृष्टिमें सब छोटे बड़े एकसे हैं। यदि मनुष्यके हृदयमें उसकी ओर कुछ भी प्रेम

होता तो क्या वह दिनरात उसीके गुण न गाया करता फिर यदि मनुष्यके मनमें उसका कुछ भी डर होता तो क्या वह इस भांति रातदिन उसकी आज्ञाओंका उल्लंघन करके पापमें परायण रहता कदापि नहीं। वह अवश्यही सोचता कि एक दिन मुझे उस सर्वशक्तिमान्के सामने अपने सब कार्मोका लेखा देना पड़ेगा। जो ऐसा नहीं है इसीसे हम कहते हैं कि मनुष्य ईश्वर-को जानता मानता नहीं ॥

परन्तु यदि कोई किसी तरहसे इस अल्पज्ञ जन्मदुखिया जीवको उस सर्वज्ञ आनन्दस्वरूप परमात्माके अस्तित्वका ज्ञान करादे तो परमानन्द प्राप्तिके अर्थ उसकी शरणमें होजाना इस जीवके लिये स्वाभाविक बात है। क्योंकि सुखहीकी खोजमें तो यह रात दिन रहा करता है। सच तो यह है कि सुखहीकी प्राप्तिकी लालसासे यह अहर्निश पाप किया करता है परंतु इसका ऐसा करना कैसी भूल है जैसा घृतप्राप्तिके लिये वारिका विलोवना वा तेलके लिये सिकता पेरना। सो इस जीवात्माको परमात्माके अस्तित्व ज्ञान करानेके लिये उसी परमात्माके सृजे हुए अनन्त पदार्थोंमेंसे कुछेकका यदि विशदरूपसे वर्णन करके समझा दिया जावे तो अवश्य ही उस पर-मात्माकी अनन्त शक्ति और अपार दया तथा विलक्षण वुद्धिका परिचय पाकर यह जीवात्मा परमात्माका अनन्य भक्त बन जावेगा। यही विचार कर मैंने संस्कृतमें प्रतिपादित जो गोलज्ञान उसीको हिंन्दीमें करके अपने प्यारे पाठकोंपर ईश्वरकी सर्वज्ञता वुद्धिविलक्षणता और अपार दयालुता को प्रगट कर दिखाया है ॥

हे प्रिय पाठको! इस गोलतत्व प्रकाशिकाके तारा निरूपण परिच्छेदके पढ़नेसे तुम ईश्वरकी अनन्त शक्तिके विषय अवश्य ही ज्ञान पाये होगे और ऋतुपरिवर्त्तन निरूपण परिच्छेदसे उसकी विशाल वुद्धि और अपार दयाको भली भांति समझही गये होगे। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि तुम्हारे मनमें ईश्वरअस्तित्व पक्की रीति से जम गया होगा। इससे पूर्व जो कठोर होकर घोर घोर पापोंमें लिप्तथे सो आज उसके अस्तित्वके ज्ञान हो जानेसे तुमको ज्ञात हो गया कि हमने उस परमात्माकी आज्ञा उल्लंघन करके जन्मसे न

जाने कितने पाप किये हैं। फिर यह सोचकर कि वह न्यायी है उसकी दर्बारमें किसी तरहका पक्षपात नहीं और न घूस खोरी वा सिफारिशकी वहां गुंजाइश है वहां तो उचित विचारसे प्रत्येक पापकर्म्मोंका फल भोग-नाही पड़ेगा तुम्हारा मन अत्यन्त भयभीत और खिन्न होगा। ऐसा होना ही चाहिये यदि अबभी तुम्हारा मन भयकंपित न होवे तो निश्चय जानो कि ईश्वरके कोपकृपाणसे तुम्हारा कभी बचाव न होगा। अब भी उसका भय और प्रेम करनेसे तुम्हारा निस्तार है परंतु फिर नहीं। सो सचमुच जो तुम्हारे मनमें उसकी ओरसे भय उपजके तुम्हें व्यथित और अधीर करता हो तथा तुम अपने निस्तारका उपाय सोचते हो तो हम तुम्हें वह भी बतलाते हैं। जो सर्व शास्त्रोंका सार तथा प्रत्यक्षमें देखा गया है। वह यही है कि उसके सन्मुख होके अपने पूर्व अपराधोंको मान लो और उनके लिये हाथ जोड़-कर क्षमा मांगो और आगेको पापकर्म्म छोड़देनेका संकल्प करो। ऐसा करनेसे वह दयानिधि अवश्य तुम्हारी दीनतापर द्रवैगा और तुम्हें भक्ति मुक्ति देगा इसमें कुछभी सन्देह नहीं। देखो प्रार्थना करनेकी रीति हम तुमको बताते हैं। प्रथम तो तुम भीतर बाहर शुद्ध होओ अर्थात् कर चर-णादि धोनेके द्वारा बाह्य शुद्धि तथा छलछिद्र त्यागनेके द्वारा अन्तःकरणकी शुद्धि करो। फिर सुन्दर आसनपर विराजकर चाहो किसी मंदिरमें भगवा-नकी मूर्त्तिके सन्मुख चाहो घरहीमें कहीं पवित्र स्थानमें बैठकर ध्यानमग्न हो गद्गद वाणीसे हाथ जोड़े हुए ऐसी प्रार्थना करो।

प्रार्थना।

हे रामचन्द्र लीजे[१] खबर मेरी[१] आनकर।
प्रहलादको लियो बचाय खंभफारकर॥
टेक–श्रीगुरु गणेश शारदा शंकर मनायके।
करताहूं अर्ज आपसे मस्तक नवायके॥
मैं हूं तबाहो[१] खस्ता बहुत रंज पायके।
लीहै शरण तुम्हारे चरण चितलगायके॥ १॥
हे रामचन्द्र०
क्या तान तेरे[१] वस्फों[१] की[१] जो कुछ करूंनयाँ।

१ जहां कहीं खड़ी रेखा पाठक देखे उसे पाठक नीचे स्वरसे उच्चारण करें।

आजिज़ है शेषशारद सव वेद औ पुराँ ॥
ब्रह्मा महेश आदि जितने गंग सब यहां ।
हरएक य विर्द रखता है बाइज़ जो हरजुबाँ ॥ २ ॥

हे रामचन्द्र०
मैं हूं निपट अधीन गुनहगार पुर खता ।
तुम विन नहीं जहांमे मेरा कोई आसरा ॥
कोई नहीं शफ़ीक़ रहम जो करे ज़रा ।
किससे करूं पुकार नहीं दादरस मेरा ॥ ३ ॥

हे रामचन्द्र०
करते रहे सहायजो भक्तोंकी वारवार ।
अब मेरी वार आप नहीं कीजिये आदार ॥
आसी हूं खाकपाहूं निपटहू गुनाहगार ।
कपटी कुटिल कठोर हूं कहताहूं यह पुकार ॥ ४ ॥

हे रामचन्द्र०
प्रहलाद नाम आपका रखताथा जो आधार ।
नरसिंहरूप धारिके उसको लिया उभार ॥
गणिका सुवा पढ़ाते ही तारीहै तुमने पार ।
पक्षी अटल ध्रुवको दई जब कहा पुकार ॥ ५ ॥

हे रामचन्द्र०
गौतमकि नारि तारि पडी थी जो हो शिला ।
भरहीके अंडे रखलिये घंटे तलेबचा ॥
निजपद दिया है आपने शवरीको फिर कहा ।
गजको लिया उभार मगरसे य जब कहा ॥ ६ ॥

हे रामचन्द्र०
इसयांकी नेसतामें अजामील था जो शेर ।
करता न था बगैर गुनाह सांझ औ सबेर ॥
यमराजके जनोंने लिया जिस घड़ी कि घेर ।
उसको लिया छुड़ाय यह सुनतेहि उसकी देर ॥ ७ ॥

हे रामचन्द्र०

पृथिवी हुई दुखी जो सितम कंससे कमाल।
शिशुपाल आदिने किया दुनियाको पायमाल॥
भार उसको दूर तुमने किया है मदनगोपाल।
जिस वक्त मुज़्तरिवहो कहा उसने ये मकाल॥ ८॥

हे रामचन्द्र०

आये सुदामाजी जु तमन्नाये मालमें।
वो गंज उनको बख्शा न आवे ख़यालमें॥
द्रोपदको सुना जब कि मुसीबतके जालमें।
बेहद बढ़ाया चीर उसी तंग हालमें॥ ९॥

हे रामचन्द्र०

विनभावके वो कौरवोंके मेवेको त्यागकर।
जाखाया साग प्रीतिका रूखा विदुरके घर॥
कड़हेमें डाला राजा जब तेल गर्म कर।
तब ही सुरत सदामा बचाया य गौशकर॥ १०॥

हे रामचन्द्र०

विष देने की चिट्ठी जो मदनको पदर लिखी।
कृपासे चन्द्रहासको विषया दिला दई॥
रानाकी भेजा ज़हर वो मीरा जो पी गई।
अमृत हुआ जो उसने गुजारिश य तुमसे किई॥ ११॥

हे रामचन्द्र०

नरसीकी भात देके सकारी है हुंडियां।
बेटीको उसकी ब्याह किया होके महरबाँ॥
दरियामें डाला राजाने ठा करके इंतहां।
हरिदास पास आये य लाते हि वरजुवाँ॥ १२॥

हे रामचन्द्र०

कोई नहीं है आगी का दुनियामें गमगुसार।
रखना हूं सरपै गठरियां पापोंकी बेशुमार।
हूं मैं तेरे लुत्फो महर फ़र्मेरा उमेदवार।